अंक : ११८

अप्रैल-जून २०१२

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां :

वंदना शुक्ल, अशोक वशिष्ठ,
महेश कटारे सुगम,
अशोक कुमार प्रजापति,
वल्लरु शिवप्रसाद

आमने-सामने

पलाश विश्वास

सागर-सीपी

डॉ. सुधा ढींगरा

१५ रुपये

अप्रैल-जून २०१२

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

कहानियां

रंगों का पटाक्षेप – **वंदना शुक्ल** ७
मुंसी ताऊ – **अशोक वशिष्ठ** १७
युगांत – **महेश कटारे "सुगम"** २१
शिनाख़्त – **अशोक कुमार प्रजापति** २५
फ़सल – **वल्लूरू शिवप्रसाद** ३५

लघुकथाएं

पड़ोसी धर्म / **डॉ. शुभदा पांडेय** १५
उड़ा-उड़व्वल / **पी. दयाल श्रीवास्तव** १६
चाय की बिक्री / **पी. दयाल श्रीवास्तव** १६
पहचान तो लिया ! / **बालकृष्ण गुप्ता "गुरू"** ४१

ग़ज़लें / कविता / गीत

तीन कविताएं / **गिरीश चंद्र श्रीवास्तव** २४
ग़ज़लें / **डॉ. अनिल** २४
ग़ज़लें / **डॉ. राजीव श्रीवास्तव** ३१
गीत / **डॉ. माया सिंह "माया"** ५६

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २
लेटर बॉक्स ४
"आमने-सामने" / **पलाश विश्वास** ४२
"सागर-सीपी" / **डॉ. सुधा ढींगरा** ४६
"बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **नक्श लायलपुरी** ५१
पुस्तक-समीक्षा ५४

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद
विश्व प्रसिद्ध बुशार्ड उद्यान (कैनाडा) की झलकियां : मई २०१२.

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
जय प्रकाश त्रिपाठी
अश्विनी कुमार मिश्र
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
Naresh Mittal, Gerard Pharmacy,
903 Gerard Avenue, Bronx NY 10452
Tel : 718-293-2285, 845-304-2414 (M)

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध** ●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" का जनवरी-मार्च २०१२ अंक अप्रैल के दूसरे सप्ताह में तैयार हो पाया था. अंक की पोस्टिंग के तुरंत बाद, २३ अप्रैल को सपत्नी अमेरिका-कैनाडा प्रवास पर हम निकल पड़े. इस बार मैं अपना लैप-टॉप साथ ले गया था इसलिए ई-मेल के माध्यम से काफ़ी लोगों से संपर्क बना रहा. थोड़े दिन शिकागो रहने के बाद मई के प्रारंभ में सियाटल गये जो कि अमेरिका के उत्तर पश्चिम में है. यहां से विक्टोरिया (कैनाडा) पहुंचे. अभी भी काफी ठंड थी. विक्टोरिया विश्वविद्यालय में २४ वर्ष पूर्व (१९८८-१९९०) मैं फ़ेलोशिप पर आया था. मन में इच्छा थी कि इतने सालों बाद अवसर मिला है तो एक बार पुरानी यादें ताज़ा की जायें. बहुत से लोगों से मुलाकात हुई. यहीं विश्व प्रसिद्ध बुचार्ड उद्यान है. इसकी कुछ झलकियां आवरण पर प्रस्तुत हैं. बहुत पहले यह स्थल श्रीमान बुचार्ड की पत्थर की क्वारी थी. खनन उपरांत श्रीमती बुचार्ड ने चारों ओर, सारे समतल और ऊबड़-खाबड़ स्थानों को तमाम ख़ूबसूरत फूल के पौधे लगाकर सुंदर बग़ीचे का अनोखा रूप प्रदान कर दिया. विक्टोरिया में पांच दिन बिताकर मैं कुछ दिनों के लिए न्यूयॉर्क चला आया. इसी बीच डॉ. सुधा ढींगरा (*"सागर-सीपी" में साक्षात्कार पढ़ें*) की ई-मेल मिली जिससे पता चला कि "अंतराष्ट्रीय हिंदी समिति" २० अप्रैल से २० मई की अवधि में अमेरिका के १५ बड़े शहरों में हास्य व्यंग्य कवि-सम्मेलन करवा रही है. यह महज इत्तफ़ाक था कि १५वां और अंतिम कवि-सम्मेलन २० मई को शिकागो में होना था और मैं भी तब वहीं था. शिकागो में यह आयोजन उत्तर प्रदेश एसोसिएशन के तत्वावधान में हुआ. सुधा जी ने संस्था सचिव डॉ. सुभाष पांडेय जी को मेरे आगमन की सूचना दे दी थी. कार्यक्रम लेमॉन्ट स्थित हिंदू मंदिर के भव्य सभागृह में रखा गया था. शाम ४ बजे से ८ बजे तक कवि-सम्मेलन चला. मात्र तीन कवि श्री गजेंद्र सोलंकी, डॉ. सरिता शर्मा व श्री संजय झाला ही मंच पर उपस्थित थे किंतु तीनों ने हास्य-व्यंग्य और गीतों से सभी श्रोताओं को सराबोर कर दिया. मैं कई बार शिकागो गया हूं लेकिन यह पहली बार हुआ कि किसी हिंदी कार्यक्रम में भाग लिया. अमेरिका में, एक जगह इतने सारे हिंदी प्रेमियों को देखकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई. "अंतराष्ट्रीय हिंदी समिति" १९८० में भारतीय संस्कृति व अध्ययन के उद्देश्य को लेकर गठित हुई थी. यह *"विश्व"* नाम की एक हिंदी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करती है. अमरीका में, विभिन्न स्तरों पर हिंदी शिक्षण की सुविधाएं मुहैय्या कराने के अलावा समिति संगोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों का भी आयोजन करती है. पिछले २९ वर्षों से प्रति वर्ष कवि-सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं.

यह अंक (११८) मेरे स्वदेश लौटने के बाद मात्र डेढ़ महीने में रिलीज़ हो सका यह प्रसन्नता का विषय है. हमें खेद है कि पिछले अंक की कहानी *"कैकेयी कथा"* के लेखक का नाम हरिप्रकाश राठी के स्थान पर हरिप्रकाश त्यागी चला गया था. यह कहानी हमें ई-मेल से प्राप्त हुई थी. हार्ड कॉपी के अभाव में एक बार जो ग़लती हुई तो उसे दोबारा जांचना नहीं हो पाया. एक निवेदन : "आमने-सामने" और "सागर-सीपी" स्तंभों के लिए रचनाओं का स्वागत है.रचना भेजने से पूर्व कृपया संपर्क करें.

●

अब इस अंक की कहानियों का ट्रेलर -- पहली कहानी *"रंगों का पटाक्षेप"* की लेखिका वंदना शुक्ल "कथाबिंब" के पाठकों के लिए नया नाम है. कहानी की नायिका तान्या का लड़का सौमित्र एक लाइलाज बीमारी से ग्रसित है. मां दिन-रात लड़के की सुश्रुषा में जुटी रहती है और पिता ऑफिस में व्यस्त! इस सबके चलते जीवन के सारे रंग मानो फ़ीके पड़ गये हैं और तभी तान्या को सहसा एक खिड़की खुली नज़र आती है. पर क्या दरअसल ऐसा है ? अगली कहानी *"मुंसी ताऊ"* के लेखक अशोक वशिष्ठ की यह पहली कहानी है. आज भी भारत के गांवों की स्थिति में कोई विशेष फ़र्क़ नहीं पड़ा है. रोज़गार की तलाश में मज़बूर होकर युवाओं को गांव छोड़ने पड़ रहे हैं. शहर में कैसी भी हो नौकरी मिल तो जाती है. अपने समय में ठसक्के से रहने वाले वयोवृद्ध मुंसी ताऊ के लिए शेष रह गया एक-एक क्षण भारी है. पुरानी बातें याद कर उनकी आंखों की कोरें नम हो जाती हैं. जहां अशोक वशिष्ठ की कहानी ख़त्म होती है वहीं महेश कटारे "सुगम" की कहानी *"युगांत"* का प्रारंभ होता है. यहां मुख्य पात्र एक विधवा नारी है. आंखों की रोशनी न होते हुए भी रानी बऊ ने किसी के सामने कभी हाथ नहीं फैलाया. लोगों की हमेशा मदद की, किंतु उनकी मृत्यु पर रोने वाला आज कोई नहीं है.*"शिनाख़्त"* (अशोक कुमार प्रजापति) जूता गांठने वाले ग़रीब सुजान चौधरी की कहानी है. बदलते ज़माने में सुजान के पास बहुत ही कम लोग आते हैं. एक ही लड़का था वह शायद काम की तलाश में शहर चला गया. पुलिस लड़के मंगल की शिनाख़्त करने के लिए सुजान को शहर ले जाती है. शहर पहुंचने पर सारी परिस्थितियां पूरी तरह बदल जाती हैं. तेलुगु लेखक वल्लूरू शिवप्रसाद की

"फ़सल" भी एक ग़रीब किसान की कहानी है जिसके लिए किसी भी क़ीमत पर तैयार फ़सल को बचाना लाज़मी है. अन्यथा बारिश के आसन्न प्रकोप से सब नष्ट हो जाना है. इसी नाते कांतय्या मजदूरों को पैसे देने के लिए अधिक व्याज पर क़र्ज लेता है. घर में बीमार पत्नी है, किंतु उसके इलाज के लिए पैसे नहीं हैं. लड़का शहर में अपने परिवार के साथ रहता है. कांतय्या ने फ़सल बचाने के लिए अपना सारा कुछ दांव पर लगा दिया. देश के प्राय: सभी मझोले किसानों की स्थिति आज कांतय्या जैसी ही है.

●

अपने विदेश प्रवास में अनेक ऐसे भारतीयों से मिला जो अमेरिका में ही बस गये हैं. सभी के मन में स्वदेश प्रेम है और स्वाभाविकता वे भारत के लिए कुछ न कुछ करना चाहते हैं. जितना बन पड़ता है करते भी हैं. किंतु भारत की राजनीतिक अस्थिरता से व्यथित भी हैं. इंटरनेट और संचार के अन्य माध्यमों से पल-पल की जानकारी इन्हें प्राप्त होती रहती है. डॉलर आज ५५ रुपये होगया, डॉलर आज ५७ रुपये होगया. सामने आते नित नये घोटाले, भ्रष्टाचार, कालाधन, पेट्रोल की बढ़ती हुई क़ीमत, सातवें आसमान को छूती महंगाई, पूरे देश में बिजली की कमी, आतंकवाद, नक्सलवाद, कश्मीर समस्या, आंध्र प्रदेश के चुनाव परिणाम, तेलंगाना, तमिल नाडु की राजनीतिक उठापटक, महाराष्ट्र में ही सबसे अधिक किसानों की आत्महत्याएं क्यों, कर्नाटक, आसाम, अरुणाचल प्रदेश की समस्या, लगभग कोई भी ऐसा विषय नहीं है जिसकी उन्हें जानकारी न हो. बहुत-से प्रश्नों के उत्तर मेरे पास थे. लेकिन भरसक मेरा प्रयास रहा कि लोगों को बताऊं कि परिस्थितियां उतनी ख़राब नहीं हैं जितना वे सोचते हैं. अवश्य ही, बहुत शीघ्र स्थितियां बदलेंगी, दिन फिर बहुरेंगे. आमीन!

मैं हमेशा से आशावादी रहा हूं. २४ साल पहले सिंगापुर गया, वहां से कैनाडा और वहीं से कई बार अमरीका गया. उसके बाद भी तीन-चार मर्तबे अमरीका जाना हुआ. हर बार अलग-अलग अनुभव हुए. इतने सालों में अमरीका भी बहुत बदल गया है. जैसा हम सभी जानते हैं वहां की आर्थिक स्थिति चरमरा रही है. नौकरियां कम हो रही हैं. कब किसको पिंक स्लिप मिल जाये कुछ कहा नहीं जा सकता. इस सबके बावजूद जहां देखो भारतीय दिखायी देते हैं. वैसे देखा जाये तो अपने रंग-रूप, भाषा और वेशभूषा के कारण भारतीयों को आसानी से पहचाना जा सकता है. यह भी है कि सूचना प्रौद्योगिकी (आई टी) के प्रादुर्भाव के कारण सारे विश्व में भारतीयों की अलग पहचान बन गयी है. आज के भूमंडलीकरण के दौर में ब्रेन ड्रेन कोई मायने नहीं रखता. विदेश में रह रहे भारतीयों को यदि यह भरोसा हो जाये कि उनका पैसा देश निर्माण के कार्यक्रमों में ही उपयोग होगा तो बहुत कुछ हो सकता है. बहुत से लोग वापस आना चाहते हैं. अपने देश मे पैसा लगाना चाहते हैं. एक सकारात्मक बदलाव आ सकता है. लेकिन जिस प्रकार की देश की राजनीतिक परिस्थितियां हैं उनके रहते सबके मन में बहुत-सी शंकाएं-कुशंकाएं हैं.

अमरीका की चमक-धमक ने मुझे कभी प्रभावित नहीं किया. पहली बार अमरीका से लौटकर मैंने एक लेख लिखा था – "भारत को भारत में खोजिए." हमारे देश की भौगोलिक परिस्थितियां भिन्न हैं, समस्याएं भिन्न हैं. तो समाधान भी अलग होने चाहिए. करने को बहुत कुछ किया जा सकता है. केवल इच्छा शक्ति का अभाव है. ६ मई २०१२ से "स्टार टीवी" और "दूरदर्शन" पर एक कार्यक्रम "सत्यमेव जयते" शुरू हुआ है ताकि अधिक से अधिक लोग इसे देख सकें. दूर-दराज़ के लोगों दिखाने के लिए भी विशेष प्रयास किये गये. भ्रूण हत्या, दहेज, वृद्धावस्था, नशे की समस्या, अस्पर्शता, घरेलू मारपीट, अपंगों की समस्या, कीटनाशकों के प्रयोग से प्रदूषण आदि अनेक समस्याओं को उठाया गया है. पहली बार अभिनेता अमीर खान इस तरह का कोई कार्यक्रम "होस्ट" कर रहे हैं. जिस तरह से अनुसंधान करके, जगह-जगह जाकर लोगों और विशेषज्ञों को ढूंढ़कर कार्यक्रम पेश किया जाता है वह बहुत ही सराहनीय है. दर्शक भी कार्यक्रम की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं. जो काम सरकार को करना चाहिए वह "सत्यमेव जयते" कर रहा है. आमिर ख़ान फॉलोअप के लिए संबंधित विभागों के अधिकारियों से भी मिल रहे हैं.

●

पिछले दिनों भारत के १३वें राष्ट्रपति के चुनाव को लेकर सरगर्मी बनी रही. यह पूरी तरह निश्चित था कि कॉन्ग्रेस जिस व्यक्ति को नामज़द करेगी वही राष्ट्रपति बनेगा. स्पष्ट बहुमत कॉन्ग्रेस के पास ही था. नामों को लेकर काफ़ी दिनों तक रस्साकसी चलती रही. कॉन्ग्रेस ने वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी का नाम प्रस्तावित किया. ममता मानने को तैयार नहीं. पहले उ. प्र. का पैकेज़ देकर मुलायम सिंह को फोड़ा, मायावती को सी. बी. आई. ने संभाला और अंतत: ममता को भी कुछ ले देकर मना लिया गया.छोटे से छोटे चुनावों के लिए आचार संहिता लागू की जाती है, किंतु महामहिम राष्ट्रपति के चुनाव के लिए खुला खेल फ़रुर्ख़ाबादी !

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ 'कथाबिंब'- जनवरी-मार्च.'१२ अंक में हरिप्रकाश राठी की 'कैकेयी कथा' सहज, सही है, किंतु ये ही बातें तो मानस तथा सभी जगहों में आ गयी हैं, कोई नयी बात तो नहीं है.

प्रस्तुत अंक का संपादकीय उल्लेखनीय है. आपने सचमुच भारतीय राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य का सही चित्रण खींच दिया है. सब इसी प्रतीक्षा में हैं कि अब उत्तर प्रदेश में गुंडा राज कब से आरंभ होता है. असल में कांग्रेस से मोहभंग तथा भाजपा से एलर्जी के कारण मुस्लिम समुदाय ने सपा की शरण लेना चाही है, थोकभाव से वोट पड़े. नतीज़ा अच्छा नहीं निकलेगा. छिटपुट गुंडागर्दी का तो आरंभ हो भी गया है उधर. सैली बलजीत की कहानी अच्छी लगी. डॉ. रामदुलारे पाठक की सुंदर कविता – बहुत दिनों बाद मन प्रसन्न करने योग्य एक कविता पढ़ने को मिली. भाषा-भाव आदि सबका मणिकांचन योग है. बधाई. प्रस्तुत अंक में श्री गोपालदास 'नीरज' के साथ बातचीत में 'नीरज' जी ने जिस दोहे– "अमिय हलाहल, मद भरे..." का उल्लेख करते उसे रसख़ान का बताया है, वह वस्तुतः 'रसलीन' का लिखा दोहा है. उसे भ्रमवश कुछ लोग बिहारी का भी समझ लेते हैं. कृपया इस भूल का निराकरण प्रकाशित करें.

चंद्रमोहन प्रधान
आमगोला, मुज़फ़्फ़रपुर-८४२००२

▸▸ जनवरी से मार्च का अंक (११६) प्राप्त हुआ. सर्व प्रथम तो पत्रिका के ३३ बसंत का खिलती धूप चखने की बधाई! और आवरण पर खिलते फूलों में हंसते-गाते 'नीरज' से मिल रही जीवन की प्रेरणा के लिए आभार.

वैसे तो 'कुछ कही, कुछ अनकही' की बातें ही विचारोत्तेजक होती हैं, लेकिन इसमें ख़ास पंक्ति- 'यूपीए में यदि यह सब हो रहा है तो एनडीए में भी होता था,' राजनीति की परंपरा का प्रतीक है. आपने इसके द्वारा दल कोई भी हो बचने-बचाने के लिए जो तर्क देते हैं उसका ख़ुलासा ही नहीं किया बल्कि आईना भी दिखाया है. देखा जाये तो यह मर्म पर देती हुई दस्तक है.

इस अंक में कनुप्रिया जी की 'तो क्या करे' नारी को जहां दिशा देने वाली कहानी है वहीं संजीव निगम की 'और सतीश जीत गया' चुनौतियों से जूझने की कहानी है. सैली बलजीत जी की कहानी 'असली नाम...चरणदास' दंश मारते उस समाज की कहानी है जो आज भी अपने को बदल नहीं पाया. और हां, सविता बजाज जी को हर अंक में पढ़ा है. इस अंक में गिरीश कर्नाड से उन्होंने रू-ब-रू कराया अच्छा लगा. वे रंगमंच के जितने सफल अभिनेता, लेखक व निर्देशक हैं उतने ही अच्छे इंसान हैं. ऐसा पढ़ने-सुनने को मिला है.

डॉ. अनुज प्रभात
दीनदयाल चौक, फारबिस गंज,
अररिया- ८५४३१८

▸▸ जनवरी-मार्च.'१२ अंक मिला. पत्रिका प्रकाशन के ३३ वर्ष के कामयाबी सफ़र पर मुबारकबाद क़ुबूल फरमाएं. इस पत्रिका ने साहित्य के नवीन क्षितिज पर अपने इंद्रधनुषी रंग जिस सुंदरता से बिखेरे हैं उनकी चमक, दमक में आपका, संपादिका मंजुश्री जी का एवं पत्रिका को संवारने सजाने वाले अन्य सहयोगियों की लगन परिश्रम और उनका पत्रिका के प्रति अटूट प्रेम रहा है. पत्रिका की कामयाबी का जो श्रेय है उसके सभी पात्र हैं. 'कारवां गुज़र गया, गुबार देखते रहे, के खालिक़ को मेरा सलाम, अर्ज कर दीजिएगा.

'शरीफ' कुरेशी
१/९१, भूसामंडी, फतेहगढ़
(उ. प्र.)- २०९६०१

▸▸ 'कथाबिंब' नियमित प्राप्त हो रही है किंतु इंटरनेट नामक बीमारी से त्रस्त होने के कारण प्रिंट मीडिया से शायद अलग-थलग पड़ रहा हूं. जनवरी-मार्च.'१२ का अंक सामने है. संपादकीय पढ़ा तो पढ़कर तबियत प्रसन्न हो गयी. साफ़-सुथरी सपाट बयानी, सच को सच कहने की हिम्मत अरविंद जी ही कर सकते हैं. कांग्रेस की गिरती हुई साख का खुला चिट्ठा खोलना आपके ही बस का है अन्यथा आजकल तो लोग राहुल-सोनिया के गुणगान करके ही अपने को धन्य मान रहे हैं. कहानी 'कैकेयी कथा' अभिनव प्रयोग है, हरिप्रसाद राठी जी ने पौराणिकता को

नवीनता के सांचे में ऐसा गढ़ा है कि कथा सजीव, आंखों के सामने साकार होती दिख रही है.

पी. दयाल श्रीवास्तव,
१२, शिवम सुंदरम नगर, छिंदवाड़ा-४८०००१.

▶▶ 'कथाबिंब' अंक ११७ नज़रनवाज़ हुआ. शुक्रिया ! इस बार कहानियां क़दरे कमज़ोर लगीं. कुछ हद तक संजीव निगम और सैली बलजीत की कहानियां याद रह जायेंगी. इस अंक की सबसे ख़ास चीज़ हिंदी के प्रसिद्ध और हरदिल अज़ीज़ कवि/शायर डॉ. गोपालदास 'नीरज' से की गयी गुफ़्तगू है. ग़ज़ल की जो परिभाषा 'नीरज' ने दी है वह बेहद सटीक और दिल को छूने वाली है. शायद इससे बेहतर परिभाषा ग़ज़ल की नहीं हो सकती. लेकिन इस सिलसिले में फारसी का कथ्य 'बज़नान गुफ़्तगू कर्दन' है न कि 'बदनाम गुफ़्तगू कर्दन' इसे पाठक सुधार लें. बातचीत के लिए अशोक अंजुम को मुबारकबाद! इस बार 'पुस्तक समीक्षा' में मयंक अवस्थी ने कमाल की समीक्षा की है बड़ी ख़ूबसूरत भाषा है इनकी.

मनाज़िर हसन शाहीन
मिडिल स्कूल लक्ष्मीपुर, वाया-चाकंद,
गया (बिहार)-८०४४०४

▶▶ जन. मार्च.-'१२ का 'कथाबिंब' का अंक प्राप्त हो गया है. बहुत बहुत आभार. कवर पर नीरजजी का युवावस्था का हंसता हुआ फ़ोटो अच्छा लगा. अंक का पढ़ना 'कुछ कही, कुछ अनकही' से ही करता हूं. आप मुद्दे ही ऐसे उठाते हैं और फिर उन्हें ठीक से डील करते हैं.

संपादकीय बिना पढ़े छोड़ा नहीं जा सकता. सविता बजाज ने सलीके से सफ़ाई दी है. 'कैकेयी कथा' वास्तव में पठनीय है. नये सत्य-तथ्य प्रभावित करते हैं और कैकेयी के चरित्र से सदभावना उत्पन्न होती है. डॉ. पाठक का गीत श्रेष्ठ है. वाह! अंक की उपलब्धि श्री नीरज जी का (सागर सीपी में) साक्षात्कार. अंजुमजी ने प्रश्न भी अच्छे किये और नीरज जी ने बिना लाग तपेट के सीधे-सीधे सही उत्तर दिये हैं. 'आमने-सामने' एवं 'अपने आईने में' पुस्तकाकार आना अच्छी ख़बर है. इस उद्यम के लिए बधाई.

चंद्रसेन विराट
१२१ वैकुंठधाम कॉलोनी, आनंद बाज़ार के
पीछे, इंदौर-४५२०१८(म. प्र.)

▶▶ अंक ११७ मिला. दिलीप का दिल से आभार.

'सरस्वती वर्षा करें, सदा कृपा का दान,
सत्साहित्य प्रकाशित करते रहो. मेरे प्रिय श्रीमान.'

'सतीश जीत गया' उत्कृष्ट है. १०० स्कूलों में 'समग्र प्रबंधन' पर वार्ता देकर कई सतीशों एवं सुषमाओं को प्रेरणा दी है. आसपास के गांवों में कई घर बैठे, खेत में काम कर रहे, चाय की दुकान पर गिलास धोते और घर में झाड़ू-पोंछा करने वाली बेटियों को स्कूल जाने के लिए प्रेरित किया है. राजस्थान परमाणु बिजली घर में वैज्ञानिक के पद पर कार्य करने के कारण घर पर बग़ीचे की देखभाल के लिए माली आता था, उसे कक्षा ८ की परीक्षा का फॉर्म भरवाया था. किताबें दी थीं. घर में काम करनेवाली कमला बहन, जी हां, वह मेरे लिए बाई नहीं, बहन ही थी. राखी-भाईदूज पर शगुन देता था. तो एक बार भाई-दूज पर टीका करने के बाद ही शगुन लिया था. उसके पुत्र-पुत्री तो रविवार की छुट्टी के दिन अंग्रेज़ी-गणित पढ़ने मेरे पास आते थे. संजीव निगम जी ने इस कहानी के माध्यम से कई पुराने संस्मरण स्मरण करवा दिये. धन्यवाद संजीव जी.

'नानू के उदार मित्र' भी एक मील का पत्थर रचना है. सीमा बहन की सशक्त लेखनी से. नमन! नानू भूरिया से मेरा भी उत्साहवर्धन हुआ है. सीमा को आभार. सैली बलजीत की आत्मकथा से भी बहुत कुछ सीखने को मिला. कृतज्ञ हूं.

दिलीप भाटिया
न्यू मार्केट, रावतभाटा-३२३३०७.

▶▶ जन.-मार्च.'१२ (अंक ११७) मेरे सामने है और सदा की भांति कहानियां स्तरीय हैं. मैं कई वर्षों से 'कथाबिंब' पढ़ रहा हूं और इस बात की तसदीक कर सकता हूं कि 'कथाबिंब' में श्रेष्ठ रचनाओं को ही स्थान मिलता है—कोई समझौता नहीं.

आपका संपादकीय समसामयिक विषयों को रेखांकित करता, प्रकाशित कहानियों पर जो संक्षिप्त टिप्पणी देता चलता है, अभिनव है. 'कैकेयी कथा' (हरिप्रकाश राठी) में कैकेयी की पीड़ा को लेखक ने ठीक ही उकेरा है लेकिन यह कहना ठीक नहीं है कि इसे किसी और ने नहीं समझा—देखिए ये दोहा-

'वो भी मां स्तुत्य है, जो दे सुत को श्राप ।
कैकेयी कारण बनी, रावण मरा न आप ।।'

लघुकथाएं 'सोच', 'स्मृति चिन्ह' अच्छी लगीं. साथ ही आदरणीय नीरज की हिंदी ग़ज़ल पर टिप्पणियां, सैली जी की कहानी 'असली नाम... चरणदास' अत्यधिक मार्मिक एवं विचारणीय है.

सिलसिला जारी रहे, यही शुभकामना है.

के पी. सक्सेना 'दूसरे'
टाटीबंध, सांस्कृतिक भवन ऊर्जा,
रायपुर-४९२०९९.

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च'१२ अंक अच्छा लगा. 'कैकेयी-कथा', कथा से कहानी के सांचे में ढलता पुराण हैं, पढ़ने पर नरेंद्र कोहली जी के उपन्यास याद आ रहे थे. 'क्रोध आवेश में मैं केले के पत्ते की तरह कांपने लगी', नयी बात लगी. कहानी 'घर के लिए' स्पर्शी लगी. स्त्री-पुरुष के वर्गीकरण को मिटाती, पीढ़ियों के सोच को दर्शाती अच्छी लगी.

'सूखा बांस कहीं नबता है?' तथा

'ये मर्द कौन हैं बेटी? ये पिता, पति हैं, पुत्र, दामाद, भाई हैं, काका-बाबा हैं, नाना-मामू हैं और भी बहुत कुछ हैं. ये सब क्या दुश्मन हैं कि इनके विरुद्ध मोर्चाबंदी करनी है.' मां के ये कथन श्यामली के प्रश्नों के समाधान ही नहीं, समाज के मतभेद की एकता हैं. 'तो क्या करें' हारी-थकी नारी की व्यथा है. नीरज जी के 'सागर-सीपी' में कई मोती दिखे. ग़ज़लों की सरल व स्वाभाविक व्याख्या मनोहारी है. डॉ. पाठक जी की लेखनी ओजस्वी और स्पर्शी हैं.

शुभदा पांडेय
असम विश्वविद्यालय, सिलचर-७८८०११.

▶▶ 'कथाबिंब' का जनवरी-मार्च.'१२ अंक कई मायने में असाधारण अंक लगा. सबसे ज़्यादा ख़ुशी इस मामले में हुई कि 'कमलेश्वर-स्मृति कथा पुरस्कार-२०११' के लिए डॉ. स्वाति तिवारी की कहानी 'आजकल' को सर्वश्रेष्ठ कहानी तथा कहानीकार द्वय भाई राजेंद्र वर्मा व ख्यात साहित्यकार डॉ. पुष्पा सक्सेना को क्रमशः 'नवारंभ' तथा 'उसका फ़ैसला' के लिए श्रेष्ठ कहानी का पंचाट मिला. इसी के साथ जिन सतत सृजनशील कथाकारों की कहानियों को उत्तम कहानी की श्रेणी में रखा गया, वाकई निर्णय का स्वागत किया जाना वाजिब होगा, क्योंकि 'कथाबिंब' में प्रकाशित इन रचना-धर्मियों की समस्त कहानियां कथ्य, शिल्प, बुनावट व कहानीपन के दृष्टिकोण से न तो कोई फंतासी बुनती हैं और न ही नये-नये उपकरण खोजती हैं. सभी को अशेष शुभकामनाएं. इस अंक की विशेष उपलब्धियां जो मेरे हित की रहीं, वे हैं नूर मुहम्मद 'नूर' की ग़ज़लें, डॉ. माया सिंह 'माया' के गीत व 'सागर सीपी' के तहत श्रेष्ठतम गीतकार, पद्मश्री, गोपालदास 'नीरज' से शायर अशोक अंजुम की प्रेरणाप्रद बातचीत के अंश. ग़ज़ल की परिभाषा में डॉ. नीरज ने जो बातें कहीं हैं उससे काफ़ी कुछ जानने को मिला. मन संतृप्त हुआ और रही बात कहानियों की तो 'कथाबिंब' की कहानियां श्रेष्ठ होती ही हैं.

तारकेश्वर शर्मा 'विकास'
राजभाषा अनुभाग, मुख्य कार्य प्रबंधक
कार्यालय, द.पू.रेलवे, खड़गपुर कारखाना,
प. बंगाल-७२१३०१

▶▶ 'कथाबिंब' का ११७ अंक मिला. 'कैकेयी कथा' में पौराणिक गाथा के माध्यम से नारी के संपूर्ण अंतःसंघर्ष का मार्मिक चित्रण है. 'तो का करें?' शीर्षक कहानी भी नारी-मन की व्यथा को उजागर करती है मगर अंधेरी सुरंग में रोशनी भी देती है. 'घर के लिए' कहानी में भी नारी की आक्रांत-चेतना की अभिव्यक्ति है मगर अंत में 'पारिवारिक संरचना' को यह कहानी दृढ़ता प्रदान कर देती है. संजीव निगम की कहानी में महानगर में संघर्षरत एक ग़रीब ग्रामीण लड़का है जो टूटकर-बिखरकर भी अपनी जिजीविषा के कारण अंततः संघर्ष में सफल हो जाता है. सैली बलजीत की कहानी में एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी की दैनंदिन पीड़ा एवं मौत का मार्मिक चित्रण है जिसके ज़िम्मेदार क्रूरता की सीमा लांघ चुके दफ़्तरवाले, कॉलोनी वाले ही हैं. कहानी में यथार्थ का प्रभावशाली चित्रण है. 'सागर-सीपी' में नीरज का साक्षात्कार अंक की विशेष उपलब्धि है. 'बाईस्कोप' में सविता बजाज का संस्मरण पढ़कर अच्छा लगा. कुल मिलाकर अंक पठनीय एवं प्रशंसनीय है. एक अच्छे अंक के लिए हार्दिक बधाई.

डॉ. वरुण कुमार तिवारी
स्टेट बैंक कॉलोनी, वीरपुर-८५४३४०(बिहार)

▶▶ 'कथाबिंब' पत्रिका प्राप्त हुई. पढ़ी, पत्रिका में संकलित, समस्त सामग्री उत्कृष्ट एवं पठनीय है. गुरुवर पूजनीय डॉ. रामदुलारे पाठक जी का 'ऋतुराज' गीत एवं अल्पना जी का गीत तथा अशोक अंजुम द्वारा परम पूज्य दादा नीरज जी का ग़ज़लों पर साक्षात्कार अति उत्तम एवं हृदयस्पर्शी प्रतीत हुए. डॉ. देवेंद्र सिंह जी की कहानी 'घर के लिए' भी अपना अलग रंग बिखेरती है. इतने सशक्त हस्ताक्षरों को पत्रिका में सम्मिलित कर पत्रिका को और उत्कृष्ट बनाने का कुशल कार्य जो आपने किया है वह अति सराहनीय है.

डॉ. राजीव श्रीवास्तव,
व्याख्याता, हिंदी, बी.आर.डी.डिग्री कॉलेज,
बरेली (उ. प्र.)

कहानी

रंगों का पटाक्षेप

वंदना शुक्ल

कभी–कभी मुझे लगता है कि यदि सपनों का अस्तित्व न होता तो आदमी को ज़िंदगी के भ्रमों को फ़ेस करने की आदत ही न पड़ती. पलंग, जिस पर सोम लेटा हुआ टी वी देख रहा था के पास ही मैं सोफ़े पर बैठी थी. मेरी झपकी लग गयी थी शायद या यूं ही आंखें मींचे कुछ सोच रही थी?आजकल तो सोचने और सपने में कोई फ़र्क़ ही नहीं लगता. सोचते–सोचते सपना देखने लगती हूं और सपने? अजीब चीज़ होते हैं ये, पहाड़ों पर बेमक़सद दौड़ाते, कभी नदी के इस पार से उस किनारे को दिखाते तरसाते, या किसी अनजाने गांव की संकरी कच्ची गलियों और कभी शहर की रंग बिरंगी चकाचौंध में अपने हाथ में हाथ लिये डोलते फिरते हैं. सपनों की इस तिलस्मी यात्रा से लौटने के बाद मैं अक्सर ख़ुद को बेहद थका और ठगा सा महसूस करती हूं. तो क्या इस थकान से उबरने के लिए सोना ही छोड़ दूं? ये सपने किसी के बस में आने वाले हैं, क्या कि इन्हें मुट्ठी में दबोच लूं या चूहेदानी में कुलबुलाते चूहों की तरह छोड़ आऊं किसी बीहड़ जंगल में? नहीं ....सब फ़ालतू की बातें हैं ... सच तो यह है कि मुझे सपने अक्सर डराते रहे हैं ऐसे सपने जिनकी नींद को टूटना नहीं आता.

तुम भी तो मेरी ज़िंदगी का एक सपना ही थे प्रतीक. एक ऐसा ख़ूबसूरत सपना जिसमें सरोवर थे. फूलों भरी घाटी सायेदार दरख्तों से भरी, एक ओर हरे-भरे पहाड़ नदियां खेत ...बस हम दोनों ...हाथ में हाथ लिये ...आगे सपनों के फूलों भरे रास्ते पर चलते और पीछे उम्मीदों सी लंबी सड़क को पार करते हुए ...मैं और तुम. तुम्हें याद है प्रतीक तुमने कहा था कि, ''अब भी सोच लो तनु, शादी एक बंधन है इसमें न बंधने से कहीं ज़्यादा तकलीफ़देह बंधकर टूटना होता है.'' और मैं इस ''टूटने'' की वजह हम दोनों में ढूंढ़ ही नहीं पायी थी ! तुम थे ही इतने अच्छे प्रतीक! और मैं? मैं तो क्या तुम्हें दुनियां की किसी लड़की में कोई खोट दिखा ही नहीं कभी. बस चाहते थे तुम मुझे, पर तुम कभी ठीक से बता नहीं पाये कि क्यूं चाहते हो मुझे? जब भी मैं मजाक़ में तुमसे यह प्रश्न करती तुम या तो ''पता नहीं'' कहकर टाल जाते या हम दोनों ख़ूब हंसते' तुम बिलकुल बुद्धू हो यार.... माई इन्नोसेंट बेबी'' और मैं तुमसे लिपट जाती. तुम मुझे अपनी बांहों के घेरे में भर लेते.

तुम्हें मैंने वरन किया था अपनी मर्ज़ी से, मेरे अपनों की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जो मेरे शुभचिंतक थे. दोस्त से पति बने तुम यानी प्रतीक शाह सी ए, एक नैतिकतावादी, डायनेमिक, हैंडसम पर्सनैलिटी थे. उस वक़्त दुनियां की सबसे ख़ुशनसीब लड़की थी मैं और उसके बाद जब सोमित्र यानी सोम पैदा हुआ तब तो ...लग रहा था कि अब ईश्वर

वंदना शुक्ल

लेखन : *वागर्थ, हंस, कथाक्रम, रसरंग (दै. भास्कर), जन संदेश टाइम्स, समयांतर आदि पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां/लेख प्रकाशित.*

पुरस्कार : *'कादंबिनी' कहानी लेखन प्रतियोगिता में पुरस्कृत*

संप्रति : *शिक्षिका.*

डी-२००, विद्याविहार, पिलानी (राज.)-३३३०३१ फ़ो. : ९९२८८३१५११

ने सब दे दिया. कुछ नहीं चाहिए. हम दोनों ने जल्द ही अपना अलग एक शानदार फ़्लैट ख़रीद लिया था. अब हमें किसी अपने की न मोहताजी थी न ज़रूरत.

हर व्यक्ति के सपने का एक रंग होता है ... शोहरत का, धन संपत्ति का या संतानों के उज्जवल भविष्य का. मेरे सपने बहुरंगी थे जैसे किसी अति महत्वाकांक्षी व्यक्ति के होते हैं, पर ये मैंने कभी बताया नहीं, ना ही तुमने पूछा. यूं भी तुमने कहा था, ''नौकरी की तुम्हें क्या ज़रूरत है, नौकरी तो वो लेडीज़ करती हैं जिन्हें पैसे की ज़रूरत होती है या घर से बाहर निकलने का बहाना चाहिए. तुम्हें ना पैसे की ज़रूरत है ना ऐसे बहाने खोजने की. जब जहां जाना हो जाओ. स्वयंसेवी संस्था ज्वाइन कर लो, किसी लेडीज़ क्लब या लेखक संघ की सदस्या बन जाओ.'' मुझे इस घर में किसी चीज़ की ना मनाही थी ना टोका टाकी...जो खाऊं, जो पहनूं जैसे चाहूं रहूं. हां, पर कभी-कभी मुझे स्कूल का एक प्रकरण याद आता था, स्कूल में एक निबंध लिखने को दिया गया था — शायद आठवीं, नवीं क्लास में पूछा गया था, ''जीवन में क्या बनना चाहते हो?'' मुझे बहुत देर तक लगता रहा था कि इस टॉपिक में ''क्या'' दो बार होना चाहिए था.

देखो, फिर सोचने लगी ...अतीत की नदी में उतरने के लिए बस एक नाव चाहिए मुझे तो.

फ़िलहाल....एक पत्रिका मेरी गोद में खुली रखी है पढ़े जाने का इंतज़ार करती हुई और मै बिंदास आंखें मींचे पड़ी हूं....डॉक्टर कहते हैं तुम्हे ''इन्स्योमीनिया'' यानी नींद न आने की बीमारी हो गयी है. पर मैं कहती हूं नहीं ... मैं सोचने ज़्यादा लगी हूं ...

''मामा, पानी'' सोम ने आंखें मींचे ही कहा, मैंने उठकर सोम को पानी दिया, शायद विचारों की अध् होशी में पानी का गिलास उसके हाथ में पकड़ा दिया था. जब-जब सोम के पास आती हूं कोई तारा सा टूटता लगता है मन के आकाश का, वही तारा जो पूरी दुनियां में सबसे ज़्यादा चमकीला था. मैंने सोम की कुनमुनाहट सुनी और पानी का ग्लास उसके ऊपर गिर गया. अचानक मैं तंद्रा से जैसे जागी.

''मम्मी ...मेरे हाथ ग्लास नहीं पकड़ पाते ना?'' उसने निरीहता से कहा.

मैं जैसे आकाश से गिरी धम्म से, ख़ुद पर बेहद कोफ़्त हुई कि मैं क्यूं भूल जाती हूं बार-बार कि सोम की उंगलियां इतनी टेढ़ी हो गयी हैं कि वह कोई चीज़ पकड़ नहीं पाता.

''सॉरी बेटा ...मैंने कातर दृष्टि से उसे देखा वह उदास और दुखी लगा.''

''इट्स ऑल राईट मामा.'' उसने कहा ''देखो तुम्हें ही दिक़्क़त हो गयी ना अब साफ़ करना पड़ रहा है सब,'' उसने मुझ पर तरस खाते हुए कहा.

जब हाथ पैर अशक्त करने थे तो क्यूं बनाया इसे इतना सहृदय और समझदार?

मैंने ऊपर की ओर देखा जैसे कोई अदृश्य शक्ति सचमुच ही मेरी शिकायत सुनने बैठी है और वो जादुई छड़ी घुमायेगी और सोम ...मेरा प्यारा बेटा फिर से पहले जैसा हो जायेगा. जैसे बचपन में दादी ''करवा चौथ'' की कहानी मां को सुनाती थीं कि ''जैसे ही उसने व्रत करना शुरू किया उसके शरीर का कोढ़ ठीक होता गया और वह बिलकुल स्वस्थ हो गयी.'' मैंने उसके कपड़े बदले और उसे अपने हाथों से पानी पिलाकर लिटा दिया.

सोम फिर टकटकी लगाये छत की ओर देखने लगा जैसा कि अब वो प्राय: करता है. मैंने उसे रोका भी नहीं हालांकि पहले मैं उसे इस तरह देखकर उसका मन बहलाने के उपक्रम करती थी. उसे कहानी सुनाती, कभी लोरी, कभी कोई घटना ...पर अब मैं कुछ नहीं करती. देखने देती हूं उसे यूं ही टकटकी बांधे छत की ओर. बस अपनी नज़रें हटा लेती हूं वहां से और किसी काम में व्यस्त हो जाती हूं. कभी-कभी ज़िंदगी मन भर का पत्थर बन जाती है जो उम्र के सीने पर रखी रहती है चट्टान की तरह और हम लाख चाहने पर भी हिलने-डुलने लायक़ भी शेष नहीं बचते. आदमी को ख़ुद की नज़रों में निरीह कर देना ईश्वर प्रदत्त सबसे क्रूरतम कठोरता है.

कितने संतुष्ट और संतृप्त थे हम तीनों एक दूसरे से और ख़ुद से. सोम यानी सौमित्र कुमार, मेरा और प्रतीक का बेटा ...कितना प्यारा गोल-मटोल था वो सात वर्ष तक! हड्डियों की इस भयानक बीमारी से पहले सामान्य बच्चों से भी अधिक होशियार और स्वस्थ्य. अचानक उसके हाथ पैर मुड़ने शुरू हो गये थे. जब डॉक्टर को दिखाया तो उन्होंने इसे एक 'रेयर बीमारी' बताया था.

अस्पतालों से लेकर प्राइवेट डॉक्टरों और चिकित्सा

की किताबें छान मारने से लेकर पैथियों को खोदने तक सब आज़माने के बाद अंतत: मैंने अपने अतीत में देखे गये सारे सपनों में गिरह बांध दी थी. सोम की बीमारी के सामने हम दोनों विवश थे. क्या-क्या उपाय नहीं किये हमने झाड़-फूंक से लेकर फ़िजियोथेरेपी तक जिसने जो कहा. फिर धीरे-धीरे मन को काबू करने की कला सीखते हुए सोम को गोद में लेकर चलना शुरू किया और फिर बहुत भारी मन से उसके लिए एक व्हील चेयर ला दी गयी. अब वह बिलकुल पराश्रित है. यह वही बेटा है जिसके पैदा होने से सात वर्ष तक मैंने हर मां की तरह उसके इंजीनियर या डॉक्टर, उसकी शादी और फिर उन दोनों की छत्र-छाया में हम दोनों के बुढ़ापा काट देने का सपना संजो लिया था. अजीब है यह एहसास भी कि गोद का शिशु मां को उसके बुढ़ापे तक के लिए आश्वस्त कर देता है और मां की आंखों में सपने चहलक़दमी करने लगते हैं.

जीवन ने अचानक एक ज़बरदस्त तबदीली का रास्ता अख़्तियार कर लिया था. प्रतीक घर के उत्तरदायित्व भूल जाने की हद तक नौकरी के प्रति जुनूनी हो गये थे. सो वे रात देर से आते. उस वक़्त उनके सामने अपने दु:ख दर्द लेकर बैठना मुझे औचित्यहीन लगता था. घर में रहकर हर वक़्त सोम के अतीत को याद करना और भविष्य की चिंता में डूब जाना बस इतना ही अर्थ रह गया था मेरे लिए दिन रात का. पूरा दिन मेरे लिए एक थका देने वाली पहाड़ की चढ़ाई होती थी जैसे, जिसे रात की कुछ घंटों की नींद में ही ठौर मिलता था.

एक दिन लेकिन चमत्कार हो गया. एक सपना कहीं से उड़ता हुआ आया, मेरी खुली पलक की डंगाल पर बैठ गया. अचानक मेरे सामने इच्छाओं का एक विशाल समंदर लहलहाने लगा, किनारों पर उम्मीदों की रेत के कण चमकने लगे, मैंने करवट बदली...मैंने महसूस किया कि मैं सचमुच ज़िंदा हूं.

हुआ यूं कि उस दिन जब सोम आंखें मींचे पड़ा हुआ था पलंग पर और मैं उसके पास सोफ़े पर बैठी थी. कुछ सन्नाटे जो मुझसे लिपटे रहते थे वो मुझे घेरे ऊंघ रहे थे. मैं ऊब की गहरी खाई में बैठी कोई पत्रिका उलट-पुलट रही थी. एक कहानी पढ़ी. लेखक का नाम-पता कहानी के नीचे ही दिया गया था. यूं ही उसे फ़ोन लगा दिया.

''क्या मैं संभव श्रीवास्तव से बात कर सकती हूं?'' मैंने कहा.

''जी हां संभव श्रीवास्तव ही बोल रहा हूं.'' मैं कुछ देर चुप रही.

''मैं तान्या बोल रही हूं. आपकी कहानी पढ़ी, अच्छी लगी.'' मैंने तटस्थता से कहा.

''धन्यवाद जी, इस प्रोत्साहन के लिए.'' लेखक ने उत्साहित होकर कहा, ''पूछ सकता हूं कि कहां से बोल रही हैं आप?''

''जी मेरठ से'', मैंने कहा.

''अच्छा अच्छा .....मैं देहली से.''

''जी हां पढ़ा अभी ....'' कुछ औपचारिक बातचीत के बाद मैंने शुक्रिया कहकर फ़ोन ऑफ़ कर दिया.

ना जाने क्यूं मुझे बातचीत के इस छोटे से टुकड़े के दौरान लगता रहा जैसे मैंने अरसे बाद किसी गहरी अंधेरी खोह से निकल कर बाहर की रोशन दुनियां देखी है. एक ऐसी दुनियां जिसका सोम की बीमारी और मेरे अतीत से जुड़ी किसी 'कचोट देने' वाली घटना से अलग भी कोई वजूद है. कुछ जुगनुओं को अपने साथ ले गयी हूं फिर उसी अंधेरी खोह में मुट्ठी में भींचे.

''मामा, मुझे बाहर जाना है,'' सोम ने निरीह नज़रों से देखा, मैंने उसे व्हील चेयर पर बिठाया और लॉन में ले गयी. बच्चे क्रिकेट खेल रहे थे. सोम के चेहरे पर मुस्कराहट की एक रोशनी कौंधी और बुझ गयी.

''बेटा, पापा आने वाले हैं. तुम यहां बैठकर यह देखो मैं सैलेड बना आऊं?'' मैंने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा.

सोम ने हां में सर हिलाया और फिर खेल देखने में मस्त हो गया. मैं भीतर चली गयी.

अचानक सोम की ज़ोर से चीख़ने की आवाज़ से मैं भीतर से दौड़ी आयी. देखा, सोम कुर्सी के नीचे औंधा पड़ा रो रहा था, एक छोटा बच्चा एक पतंग लिये खड़ा है, डरा हुआ सा. पतंग जो कहीं से कटकर आयी थी.

''आंटी मैंने तो...'' बच्चा रुआंसा होकर अपराधी भाव से बोला.

''डोंट वरी,'' मैंने उसके गाल पर हाथ फेरते हुए कहा. ''यह पतंग तुम ले जाओ....'' मैंने उसे पतंग देते हुए कहा.

''नहीं भैया को दे दो'' ....कहकर वो बच्चा पतंग

सोम की गोद में रखकर चला गया.

बच्चा क्या जाने कि उसने पतंग को वहां छोड़कर एक विशाल ख़ूबसूरत आसमान उतार दिया है सोम के सपनों की बंजर धरती पर. सोम लगातार रो रहा था, मैंने डॉक्टर रमानी को फ़ोन किया. वही सोम का इलाज कर रहे थे और प्रतीक के अच्छे मित्र भी थे. हॉस्पिटल से घर जाते हुए वह सोम को देखने आये.

उन्होंने कहा, ''आपको इसे अकेले छोड़कर नहीं जाना चाहिए था. इतने दिन की मेहनत और इलाज सब बेकार हो गया.'' वे कुछ नाराज़ हुए और ''कल इसे हॉस्पिटल लाना पड़ेगा.'' कहकर डॉक्टर रमानी चले गये. प्रतीक जब घर लौटे और जब उन्हें पता चला तो उन्होंने मुझे उलाहना देते हुए कहा, ''मैं तुम पर भरोसा करके बच्चे को तुम्हारे पास छोड़ जाता हूं, और तुम? यार कैसी मां हो तुम?''

....प्रतीक सोम के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले. जैसे सोम केवल उनका बेटा है और मैं उसकी लापरवाह केयर टेकर. मेरे मलालों में एक अहसास अब यह भी शामिल हो रहा था कि सोम जैसे-जैसे पराश्रित होता जा रहा था प्रतीक कुछ ज़्यादा ही घर से बाहर रहने लगे थे. बात-बात में चिड़चिड़ाते.

मैं पूरे दिन उदास रही. मुझे लग रहा था जैसे किसी बीहड़ द्वीप पर बिलकुल अकेली निस्पंद खड़ी हूं ख़ुश्क हवाओं के बीच. घबराहट होने लगी ...अचानक मेरी उंगलियां मोबाइल के नंबर पर फिसलने लगीं.

मैंने कुछ अंकों को दबाया ....वहां से ''हेल्लो'' एक आवाज़ उभरी.

''संभव हैं?'' मैंने यूं ही पूछ लिया और पूछने के बाद मुझे अहसास हुआ कि यह एक नितांत मूर्खता पूर्ण प्रश्न था— ''हां हां! अरे तान्या तुम?''

उधर से संभव की आवाज़ आयी. वही आत्मीयता और सुकून से भरी.

''बस यूं ही, बहुत काम था तो थोड़ा फ्री हुई थी अभी, सोचा आपको फ़ोन लगा लूं?'' मैंने बिना कुछ सोचे समझे कहा.

''अच्छा किया ....मैं भी अभी ही आया हूं. बस चाय बनाकर बालकनी में लाया और यहीं खड़ा होकर चाय पी रहा हूं. तुम कैसी हो?''

संभव आप से तुम पर आ गया था.

''शायद ठीक नहीं ...विशेष कुछ भी नहीं बस यूं ही कभी-कभी मन भटक जाता है,'' मैंने हृदय-शिला को कुछ परे खिसकाया था.

वो कुछ देर चुप रहा. फिर बोला, ''मैं नहीं पूछूंगा कि तुम कौन हो, क्या करती हो एक्सेक्ट्रा ... लेकिन जहां तक मन भटकने की बात है तुम्हें बतौर दोस्त सलाह दे सकता हूं कि तुम अपनी रुचियों में ख़ुद को व्यस्त रखा करो .... तुम कह रही थीं ना कि तुम्हें अच्छा लिटरेचर पढ़ने का शौक है? ख़ूब पढ़ो और लिखो भी. अकेले लोगों का सबसे बड़ा संकट ऊब का ही होता है यार. ये हम दोनों अच्छे से जानते हैं, हैं ना?''

मैं उसे बताना चाहती थी कि मैं अकेली नहीं हूं ... मेरा एक भरा पूरा परिवार है. तीन बहनें, दो भाई और मां. पति, पति का भरा पूरा ख़ानदान, और एक बेटा भी....पर उसके बावजूद मैं .... हो सकता है कि उम्र में मैं तुमसे बड़ी भी होऊं? पर मैं ये बातें संभव से बचाकर रखना चाहती थी ....जानती थी पुरुष है ना?....और मैं उसे खोना नहीं चाहती थी.

वैसे भी मैं अकेली कहां? मेरे आसपास तो कितना शोर है ....चिंताओं का, नित नयी विपत्तियों का, और इन सबके बीच अपने वजूद को ज्यों का त्यों बचाये रख पाने का?

संभव से बात करने के दौरान मैं भूल ही जाती थी अपना इतिहास, वर्त्तमान सब .....जैसे सपने में आदमी भूल जाता है ख़ुद को और किसी दूसरी दुनियां में खो जाता है. एक नयी दुनियां, एक नये हवा के झोंके के साथ खुल रही थी धीरे-धीरे. सोम की अज्ञात बीमारी और प्रतीक की उदासीनता ने घर से लेकर मन तक जो गाढ़ी लकीर सी खींच दी थी पीड़ा और निराशा की मानों किसी अज्ञात शीतलता और आत्मीयता ने उसे परे खिसका दिया था.

''आज सोम को दिल्ली ले जाना है चेक अप के लिए डॉक्टर से एपॉइंटमेंट ले लिया है मैंने, तुम जल्दी आ सकते हो क्या?'' मैंने प्रतीक को फ़ोन किया.

''अरे मैं कैसे आ सकता हूं? कल बताया था ना कि क्लाइंट के साथ आज एक ज़रूरी मीटिंग है? तुम ले जाना. मैं ड्राइवर सुभाष को फ़ोन कर दूंगा वो जल्दी आ जायेगा आज. और डॉक्टर ने क्या कहा मुझे फ़ोन पर बता देना. डॉक्टर से बात कर लूंगा. अच्छा अब फ़ोन बंद करता हूं.'' कहकर ख़ुद प्रतीक ने ही फ़ोन काट दिया.

कुछ देर मैं खड़ी रही किंकर्तव्यविमूढ़ सी. कैसे बताऊं तुम्हें प्रतीक कि बात सोम को डॉक्टर के यहां ले जाने की नहीं बल्कि सोम का निरीह चेहरा न देख पाने की है. तुमने तो हज़ार बहाने खोज लिये हैं सोम से आंखें न मिला पाने के, पर मैं? सोम, जो मुझे हर बार ही अपने बचपन में ले जाता है. जब वह हंसता खेलता, गोल मटोल बच्चा था. स्कूल जाता था बस में, खिड़की पर बैठ मुझे बाय करता था, खिलौनों की ज़िद् करता था .....अब? अब वह ख़ुद जानता है, सब समझता है सबकी तकलीफ़... कोई ज़िद् नहीं करता, न नाराज़ होता किसी बात पर. बस पलंग पर लेटा छत को देखता रहता है. न जाने क्या सोचता हुआ और मैं उसे देखते हुए देखती रहती हूं अपनी उन आंखों से जिन्होंने आंसुओं को दिल का रास्ता दिखा दिया है.

ड्राइवर ने कार दरवाज़े पर लगा दी थी. सोम रोये जा रहा था. ज़िद् कर रहा था अस्पताल न जाने की. वह डरने लगा था अस्पताल जाने से. अस्पताल में घुसते ही डरते हुए इधर-उधर देखने लगता. डॉक्टर, नर्सों को देख. वह मुझसे चिपक जाता और उनकी तरफ से मुंह फेर लेता. उसे जबरन ले जाया जाता तो वो सुबकने लगता.

अब हम दिल्ली में थे, अस्पताल आ गया था. डॉक्टर ने चेक करके कहा कि संभवत: भीतरी रक्त रिसाव होने लगा है. इस डीजीस में हड्डियां बहुत कमज़ोर हो जाती हैं. हो सकता है कोई फ्रेक्चर हो! इसलिए थॉरो चेक-अप के लिए अस्पताल में भरती होना पड़ेगा. एक ऑपरेशन भी करना पड़ सकता है. ऑपरेशन मेजर है, पर डरने की बात नहीं.

प्राइवेट रूम में शिफ़्ट होने के बाद मैंने प्रतीक को फ़ोन पर सोम के भरती कर लिये जाने की सूचना दी.

प्रतीक ने निर्भाव से कहा, ''कोई बात नहीं ...तुम देखो उसे ..ए टी एम कार्ड तो है ना तुम्हारे पास ....अस्पताल के बग़ल में ही ए टी एम है, जितने पैसों की ज़रूरत हो निकाल लेना. मैं रात में आऊंगा.

आधी रात थी. मैं और सोम अस्पताल के चौथे मंज़िल के प्राइवेट रूम में थे. उसे फ्रेक्चर नहीं हुआ था पर ऑपरेशन होना था. प्रतीक का न कोई फ़ोन आया था न वे ख़ुद आये. मेरा भी मन नहीं हुआ फ़ोन करने का. कोई लाभ भी नहीं था, जानती थी कि ऑफ़िस की ज़िम्मेदारियों में घर भूल जाना उनके स्वभाव का एक हिस्सा है. अस्पताल रोशनी से नहाया हुआ था, दवाइयों की गंध फैली हुई थी रोशनी की तरह. नर्सों की आवाजाही और बग़ल के किचिन जिसमें मरीज़ों का खाना बनता था, में से बर्तनों की खड़खड़ाहट अब भी आ रही थी. पर ना जाने क्यों फिर भी यहां दमघोंट सन्नाटे ही पसरे रहते हैं या महसूस होते हैं. सोम की आंखें फिर छत पर टंग गयी थीं. और मैं फिर निराशा से भर गयी. मैं सोम की बग़ल में लेट गयी और हौले-हौले उसका माथा सहलाने लगी.

''मामा वो ही राजकुमारी वाली कहानी सुनाओ ना, जिसकी जान तोते में थी.'' सोम ने कहा.

मैं कहानी सुनाने लगी. मैंने हंसकर कहा, ''राजकुमारी की जान तोते में बसती थी. पता है राजकुमारी का नाम क्या था?''

सोम मेरी तरफ़ जिज्ञासा भरी नज़रों से देखने लगा. मैंने कहा, ''राजकुमारी का नाम था मम्मी. वो मेरा वाक्य पूरा करते हुए बोला, ''और तोते का नाम सोम.'' वह और मैं हंसने लगे. मैंने हंसकर उसको सीने से चिपका लिया. ...अपने मन की उथल-पुथल को मैंने अपने विवेक से कसकर जकड़ रखा था. थोड़ी देर में कहानी पूरी होने से पहले ही सोम गहरी नींद में सो चुका था. मैं उठ गयी.

रात गहरा रही थी. मेरा सर दर्द से फट रहा था. ''ऑपरेशन मेजर है ..लेकिन घबराने की बात नहीं.'' डॉक्टर के शब्द गूंज रहे थे मेरे कानों में. मेरे भीतर एक तूफ़ान उठने लगा था. उथल-पुथल मची हुई थी और मैं इस बात को महसूस कर रही थी कि भीतर के तूफ़ान को थामे 'बाहर' से शांत बने रहना कितना कठिन और बोझिल होता है ...शायद मैं चीख़ने लगूं या मेरे मस्तिष्क की तड़कती नसें फट जायें ....मैं देर तक सोचती रही कि इस वक़्त किस 'अपने' से बात करूं जो मेरे मन के हाहाकार से मुझे कुछ पलों को निजात दिला सके, और दूर-दूर तक सोचने के बाद अंतत: इसी निर्णय पर पहुंची कि, ''कोई नहीं है, ऐसे आधी रात में फ़ोन?...सब भीतर ही भीतर गालियां देंगे मुझे कि आधी रात में फ़ोन करने की क्या ज़रूरत थी, और बाहर से, उनींदे से कुछ सांत्वना में पगे शब्द बोल दे...नहीं ...नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकती. वैसे भी सब 'बाहर' ही तो रहते हैं! एक बार प्रतीक को? मैं सिहर गयी भीतर ही भीतर. प्रतीक का क्रोध से भरा चेहरा और फटकार ..नहीं फिर नहीं ...मैं उठ बैठी. बेचैनी बुरी तरह घेरने लगी मुझे. मैं कमरे

से बाहर निकल आयी. मेरे माथे पर पसीने की बूंदें छलछला आयी थीं. कॉरीडोर सुनसान था जब मैं अस्पताल के उस प्राइवेट रूम से बाहर निकली सिवाय उस दुबली-पतली साउथ इंडियन नर्स के जो हाथ में ब्लड प्रेशर का इंस्ट्रूमेंट लेकर किसी मरीज़ के कमरे में जा रही थी. मैं नर्सों के कमरे के बाहर बिछी काली पुती हुई लोहे की कुर्सी पर बैठ गयी जो विज़िटर्स रूम का एक हिस्सा था. कभी-कभी हमारे सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो जाती है और हमारी इंद्रियां हावी हो जाती हैं हमारी सोच पर. हम वह कर बैठते हैं जो सोचे समझे हमें नहीं करना चाहिए.

मेरी उंगलियां फिर होशोहवास खो मोबाइल पर फिसलने लगी थीं.

''हैलो''...

''अरे तान्या तुम ?... इतनी रात गये?....सोयी नहीं?'' संभव की आवाज़ थी.

''जी नींद नहीं आ रही थी सिर दर्द था ...''

''अच्छा किया ....मैं भी अभी लिख ही रहा था कुछ ....दिन में तो समय मिलता नहीं ...वैसे भी मुझे रात सुकून भरी लगती हैं इसलिए रात में ही लिखाई-पढ़ाई होती है. संभव ने कहा, वह बहुत नॉर्मल लग रहा था. न आश्चर्य, न बेचैनी, और न कोई उत्सुकता.

''सिर दर्द की कोई दवा ली तुमने?'' संभव ने बहुत आत्मीयता से पूछा.

''नहीं ....''

''अरे क्यूं? घर में दवा नहीं है?''

मैंने फिर बिना सोचे समझे त्वरित उत्तर दिया ...''जी हां दवा नहीं है.''

''फिर?'' वो कुछ देर चुप रहा फिर बोला, ''लेट जाओ सोने की कोशिश करो.''

''लेटकर तो घबराहट होती है.'' मैंने बच्चों जैसे कहा.

''नहीं-नहीं लेट जाओ.'' ...उसके स्वर में फ़िक्र और अधिकार दोनों थे.

मैं सोफ़े पर लेट गयी. ''अब सोने की कोशिश करो,'' उसने कहा.

लेटकर न जाने क्यूं मुझे लगा कि मेरे सिर पर हल्के हल्के कोई हाथ फेर रहा है. उसके बाद एक शून्य ....

''मामा हम हॉस्पिटल से कब जायेंगे घर?'' मैं चौंक कर उठ गयी, सोफ़े पर बैठ गयी. चिड़ियों की चहचहाट और बाहर पदचाप की आवाज़ें सुनायी दे रही थीं ...सुबह हो चुकी थी. मुझे कुछ वक़्त लगा यह स्वीकारने या महसूस करने में कि मैं अस्पताल में हूं ...यानि पिछला सफर एक गहरी नींद के शहर में था. ताज़गी और उत्फुल्लता के चिन्ह मेरे चेहरे पर उग आये थे. याद नहीं कि कितने दिनों, बल्कि महीनों के बाद मैं इतनी गहरी नींद सोयी थी. मैंने सोम को प्यार किया, उसके गाल पर चुम्मी ली, ''बस बेटा जल्दी ही.'' अचानक याद आया आज तो सोम का ऑपरेशन है?.....मैं फिर बुझ गयी मेरे चेहरे पर वही पहले वाली कालिमा पुत गयी...हड़बड़ाकर एक बार प्रतीक को फिर फ़ोन लगाया

''हां बोलो तान्या'', प्रतीक ने कहा.

''रात तीन बजे फ्री हुआ मीटिंग से. आज मैंने उन्हें बोल दिया कि मैं नहीं आ पाऊंगा .....बस अभी फ्रेश होकर आता हूं?''

कुछ राहत की सांस ली मैंने.

प्रतीक आ चुके थे. ऑपरेशन ज़रूरी था आज ही. प्रतीक निश्चिंत थे और दौड़-दौड़ कर सभी औपचारिकताएं पूरी कर रहे थे अस्पताल की. मैं चुपचाप बैठी थी सोम के सिरहाने.

''मामा फिर क्या हुआ उस राजकुमारी का? जिसकी जान तोते में थी?...मैं तो सो ही गया था जब आप कहानी सुना रही थीं.'' ...सोम हंसकर बोला. वह अस्पताल में होते हुए भी अस्पताल का होना भूल गया था जिससे वह सबसे ज़्यादा ख़ौफ़ खाता है. कल का रोना भूल वह हंस रहा था. शायद मेरा निकट होना उसे सुकून देता है, काश मैं भी उस सुकून को महसूस कर पाती ... आज सोम का ऑपरेशन है उसे यह नहीं पता. वह तो ऑपरेशन का मतलब भी नहीं जानता! मैं क्यूं नहीं हूं सोम जैसी, क्यूं जानती हूं हर चीज़ का मतलब? और क्यूं नहीं हूं इतनी 'मज़बूत' प्रतीक की तरह जो 'जो होना होगा ...होगा .. हमारे हाथ में कुछ भी नहीं.' के दर्शन के साथ निश्चिंत ज़िंदगी जीते हैं?

सोम को स्ट्रेचर पर ऑपरेशन रूम तक ले जाया जा रहा था. आज उसने कुछ नहीं खाया था डॉक्टरों ने मना किया था. मुझे याद आया मैंने भी तो कुछ नहीं खाया कब से? मुझे तो यह भी याद नहीं. बस कल जब कमज़ोरी बहुत लग रही थी, तब एक सेब और मोनेको के दो

बिस्किट भर खाये थे और जब मैं खा क्या बस निगल रही थी ऐन उसी वक़्त कानपुर से प्रतीक के बड़े भाईसाहब का फ़ोन आया था.

''प्रतीक ने बताया सोम के अस्पताल में भरती होने की ख़बर...बहुत बुरा लगा. बहू ध्यान रखना उसका ...अभी बच्चों की परीक्षा का समय है तो आ तो नहीं पायेंगे...लेकिन ज़रूरी हो तो बुलाने में भी संकोच मत करना ...पैसों की ज़रूरत हो तो बताओ जितने भी चाहिए ...आख़िर घरवाले ही तो काम आते हैं ना ऐसे वक़्त ....''

''नहीं भैया ज़रूरत नहीं है अभी .....प्रतीक हैं ना ...ज़रूरत होगी तो ज़रूर कहेंगे.'' मैंने फ़ोन रख दिया.

...ज़रूरत?.....अकेलापन सहसा और गहरा गया. नर्स एक फ़ॉर्म लेकर आयी थी.

''इसे पढ़ लीजिए मैडम और साइन कर दीजिए.''

मेरे हाथ कांप रहे थे. फ़ॉर्म में लिखा एक-एक शब्द मुझे डरा रहा था. मैंने बिना उसे पूरा पढ़े जल्दी से साइन कर दिये और नर्स वह फ़ॉर्म ले गयी.

स्ट्रेचर पर सोम को ऑपरेशन थियेटर तक ले जाया जा रहा था. थियेटर के सामने पहुंचकर सोम रो रहा था चीख़-चीख़ कर. क्या यह वही सोम है जिसे सबके सामने रोने में हमेशा शर्म आती थी और जो छिपकर दरवाज़े या मेरे दुपट्टे की आड़ में रोता था. कहता था, ''मामा रोते में मेरा फ़ेस बहुत हौरीबल दिखता है.'' अब मेरी तरह उसकी दुनियां भी देह धरती से परे होती जा रही थी?

''मामा तुम भी चलो ना अंदर!'' उसने मेरा हाथ कस कर पकड़ लिया था. मुझे लग रहा था मेरे मुंह के अंदर ज़ुबान ही नहीं है, या मैं भाषा ही भूल चुकी हूं.

प्रतीक ने उसका हाथ छुड़ाते हुए कहा, ''बेटा तुम अंदर जाओ मामा अभी आती है ...'' और कुछ लोग उसे ऑपरेशन थियेटर के भीतर ले गये थे. कुछ ही देर में ऑपरेशन थियेटर के दरवाज़े के ऊपर लगी ग्रीन लाइट जल गयी थी. मैं वापस आकर धम्म से बाहर पड़ी बेंच पर बैठ गयी.

प्रतीक ने मेरा हाथ पकड़ लिया, ''घबराओ मत ....देखो सब ठीक ही होगा ...वैसे जो होना होता है वो तो...''

''चुप रहो तुम .....जो होना होता है..... जानती हूं मैं भी कि जो होना होता है वही होता है. तुम्हारे साथ शादी होना थी हो गयी....घरवालों को हमारा बहिष्कार करना था, कर दिया....सोम को यह बीमारी होनी थी हो गयी... तुम्हें शहर के सबसे पॉश इलाक़े में सबसे ख़ूबसूरत घर बनाना था बना लिया .....सबसे महंगी कार लेनी थी ले ली .....पर मैं इस 'होने' की दुनिया से अलग हूं. मेरे सामने इससे भी विराट आसमान था इससे भी गहरा समुद्र.... मुझे इस पिंजरे से बाहर जाने दो,'' मैं चीख़ना चाहती थी पर न जाने कैसे मेरे होश ने मुझे संभाल लिया और मैं अपनी रीती आंखों से सिर्फ़ ज़मीन देखती रह गयी.

ऑपरेशन थियेटर के बाहर बैठना निषेध था इसलिए मैं और प्रतीक वापस प्राइवेट रूम में आ गये. तभी एक नर्स दौड़ी हुई आयी ....''सर ख़ून की ज़रूरत पड़ सकती है, मैडम का तो उस दिन टेस्ट किया था नहीं मैच करता. आप अपना करवाइए या कोई इंतज़ाम ...क्योंकि अभी यहां 'ओ' पॉज़िटिव कम एवेलेबल है. एहतियात के लिए कुछ स्टोर करना ज़रूरी है'' कहकर वह चली गयी. प्रतीक उसके पीछे-पीछे चले गये.

सन्नाटे कुछ इस क़दर घनीभूत हो रहे थे मेरे चारों ओर कि कान सुन्न से पड़ गये थे. कुछ सूझ ही नहीं रहा था क्या करूं? मेडिकल साइंस ने इतनी तरक़्क़ी कर ली पर वह अभी तक ऐसी कोई दवा क्यूं नहीं ईजाद कर पाया कि आदमी अपना अतीत, दु:ख, चिंताएं सब भुला दे....हमेशा के लिए ! बेचैनी और उदासी उन सन्नाटों के साथ मिलकर मुझे बुरी तरह झकझोरने लगी. मैं प्राइवेट रूम की खिड़की के सींख़चे कसकर पकड़े हुए खड़ी थी जैसे बस अभी ग़श खाकर गिरने ही वाली हूं. मोबाइल की घंटी बज रही थी. प्रतीक का फ़ोन था

''मैं ब्लड के लिए कुछ इंतज़ाम कर रहा हूं तुम रेस्ट कर लेना कल से सोयी नहीं होगी.''

''कल से?'' मैं हंस दी एक फीकी सी हंसी. और क्या कहा तुमने प्रतीक रेस्ट? क्या इतनी बेफ़िक्री और तटस्थता हो सकती है मनुष्य के इस जीवन में? मैं सोचने लगी. इस वक़्त दुनिया में सबसे ज़्यादा अज़ीज़ मेरे बेटे सोम का ऑपरेशन चल रहा है और मैं रेस्ट? तुम जानते हो प्रतीक कितनी रातें मैंने आंखों में काटी हैं बैठे-बैठे? प्रतीक पर ग़ुस्सा नहीं बल्कि कभी कभी रश्क होता है ... स्मृति में. सोम की निरीह आंखें मेरे सामने झपझपाने लगीं.

कमरे में घुटन होने लगी थी. खिड़की के बाहर दुनियां

के कारोबार चल रहे थे और खिड़की के भीतर एक घना सन्नाटा पसरा हुआ था दीवारों से टकराता हुआ. मेरा मन मानों एक आंधी हो गया था. बवंडर की तरह घूम रहा था दीवारों के बीच टकराता हुआ. मैं फिर अपने होशोहवास खोने लगी. मोबाइल पर वही एक नंबर जो हमेशा मैं एक बेहोशी में डायल करती थी.

''हल्लो तान्या ...तुम्हें ही याद कर रहा था मैं.'' संभव की ख़ूब उत्साह से भरी आवाज़ सुनायी दी.

''अरे क्यूं?'' मैंने अपने भाव छिपाने की कोशिश करते हुए कहा.

''अरे आज एक किताब पूरी की हेमिंग्वे की, ''एक्रॉस दि रिवर एंड इन्टू दि ट्रीज' सोचा तुम्हें भी पढ़ने के लिए दूंगा. इस पुस्तक में उसने अपनी भावी मृत्यु की कल्पना की है. इट्स फेंटास्टिक यार ....''

''ओह मृत्यु?'' मेरे मुंह से अचानक निकला.

वो कुछ देर चुप रहा. फिर बोला, ''क्यूं मृत्यु दु:ख का विषय है? तुम अवसादित होती हो इससे?'' स्ट्रेंज.....मुझे तो लगता है कि मृत्यु एक ऐसी स्लेट है जिस पर हम अपना अतीत पोंछकर एक नये ताज़ातरीन अध्याय की शुरुआत करते हैं. मेरे लिए तो यह एक बेहद रोमांचकारी विषय है ....एक उत्सव की तरह, यू नो अ फेस्टिवल ऑफ डेथ ....एकरसता और पीड़ाएं थका नहीं देतीं हमें?''

''दुनियां के सारे पुरुष एक जैसे होते हैं...'' मैंने मन ही मन कहा.

अस्पताल के बाहर इतनी सामान्य दुनियां का अस्तित्व भी है कोई. यह तो मैं भूल ही गयी थी.

''जी. ज़रूर पढ़ूंगी.'' मैंने संक्षिप्त सा उत्तर दिया. ''संभव ....मुझे तुम्हारी ज़रूरत है.''

अचानक मेरे इस वाक्य पर वो थोड़ा सहम सा गया. कुछ देर की चुप्पी के बाद उसने पूछा, ''मतलब?''

''बहुत अकेली हूं ...घबराहट बहुत हो रही है ....लग रहा है कोई तूफ़ान आने वाला है ...और मुझे बहाकर ले जाने वाला है.''

''अरे क्या हुआ? कुछ ख़ास हुआ क्या?'' संभव कुछ परेशान सा दिख रहा था.

''तान्या मैं इस वक़्त ऐसी जगह हूं जहां से आना मुश्किल होगा, वरना ज़रूर आ जाता. लेकिन फिर भी बताओ क्या हुआ तान्या?''

मेरा दिल बैठने लगा, किसी अनहोनी के पूर्वानुमान की अनुभूति हो रही हो जैसे.

अचानक होश आया मुझे. मैंने बात बदलते हुए कहा, ''संभव क्या कोई ऐसी किताब है जो हमें अतीत से विलग कर सकती है? हम सिर्फ़ भविष्य के बारे में सोचें ....?'' मैं पागल हो चुकी थी शायद. मेरा विवेक मेरे होशोहवास की सीमा तोड़कर एक हरहराती हुई नदी में तब्दील हो रहा था. धीरे–धीरे ऐसी नदी जिसके किनारे ढह रहे थे. बिना कुछ जवाब पाये मैंने फ़ोन स्विच ऑफ़ कर दिया.

सोम का ऑपरेशन फ़िलहाल सफल रहा पर वह अब भी बेहोश था और ऑपरेशन थियेटर से उसे आई. सी. यू. में शिफ़्ट कर दिया गया था. मैंने मन ही मन ईश्वर का धन्यवाद किया. एक नर्स ने कहा अब आप लोग बच्चे को देख सकते हैं आई सी यू में जाकर ...पर मैंने मना कर दिया. प्रतीक ने आश्चर्य से मेरी ओर देखा. मैं सोम को भले ही हंसते–खेलते ना देख पाऊं, भले ही उसे अपनी आंखें छतों, दीवारों पर टिकाये देखती रहूं पर बेहोश ...नहीं बिलकुल नहीं देख सकती उसे.

हमें पता चला कि मुंबई के बच्चों के डॉक्टर ढींगरा जिन्हें सोम को दिखाने हम कब से मुंबई जाने का प्लान बना रहे थे वे यहां दिल्ली में ही हैं और आज यहां इस अस्पताल में आने वाले हैं. हालांकि उन्हें दिखाने वालों की बहुत भीड़ थी लेकिन प्रतीक ने भागदौड़ करके उनका एपॉइंटमेंट ले लिया था. सोम आई सी यू में था. प्रतीक ने उसकी सारी रिपोर्ट्स डॉक्टर ढींगरा को दिखायीं. प्रतीक और मैं डॉक्टर ढींगरा के केबिन में थे. हमें ये जानकर अवर्णनीय ख़ुशी हुई कि सोम पूरी तरह ठीक न होकर भी अस्सी प्रतिशत तक ठीक हो सकता है. स्कूल जा सकता है. अपने काम ख़ुद कर सकता है. डॉक्टर ने बताया कि हालांकि बीमारी रेयर है पर अब इस पर काफ़ी रिसर्च के बाद इलाज खोज लिया गया है. अचानक मुझे लगने लगा कि मेरे जीवन के आसपास खड़ी हो गयी बदक़िस्मती की ऊंची दीवारें सहसा ढह रही हैं और मेरे सामने भी दूर तक फैला मैदान और ख़ूबसूरत बग़ीचे हैं.

अचानक फ़ोन की घंटी बज उठी, 'हैल्लो.'' वहां से संभव की आवाज़ आयी. कुछ पल मुझे ख़ुद को संयत करने में लगे.

''जी अभी थोड़ी व्यस्त हूं बाद में फ़ोन करती हूं.'' मैंने कहा और फ़ोन रख दिया. यह संभव की ओर से मुझे किया गया पहला फ़ोन था.

''तान्या ज़िंदगी में पहली बार थोड़ा नर्वस हो रहा हूं, तुमसे बात करना चाहता हूं ...'' संभव का एस. एम. एस. आया. मैंने सरसरी निगाह से पढ़ा और फ़ोन रख दिया.

डॉक्टर ढींगरा के फ़ोन की घंटी बज रही थी. उन्होंने इशारे से प्रतीक से कहा कि वो कुछ देर बाहर बैठे.....हम दोनों बाहर आ गये. पैसेज में काफ़ी भीड़ थी लोग डॉक्टर ढींगरा से एपॉइंटमेंट लेकर अपने नंबर का इंतज़ार कर रहे थे. मैं और प्रतीक वहीं बेंच पर बैठ गये. वहां सीरियस मरीज़ों की हालत देखकर मन ख़राब हो गया. आठ–नौ स्ट्रेचर रखे थे जिन पर गंभीर मरीज़ ज़्यादातर बेहोशी की अवस्था में पड़े थे. ख़ून, ग्लूकोज़, ऑक्सीजन की नलियां उनके अंगों पर लगी थीं. और उनके रिश्तेदारों के चेहरों पर गहन उदासी और दु:ख के भाव थे.

''डॉक्टर हैं ना केबिन में?'' लड़के ने जो प्रतीक की बग़ल में बैठा था प्रतीक से पूछा.

और फिर बातचीत होने लगी उनमें. लड़के के सामने व्हील चेयर पर एक बहुत दुबली पतली औरत अर्ध मूर्छित अवस्था में बैठी हुई थी जिसकी नाक में नली लगी हुई थी और ग्लूकोज़ की बोतल भी लटकी हुई थी. व्हील चेयर के पास एक नर्स खड़ी थी. लड़के ने बताया यह उसकी पत्नी है. एक तीन साल का बेटा भी. दो साल पहले बाइक दुर्घटना में पत्नी को चोट आयी थी. उसे रीढ़ की हड्डी में चोट लगी थी, पता चला मेलाईटिस हो गया है. यानी स्पाइनल कॉर्ड का हेम्ब्रेज. अब वह ज़िंदगी भर चल नहीं पायेगी. कल उसे ख़ून की उल्टी हुई थी. डॉक्टर ने कहा था कि अचानक ख़ून की उल्टी होना ख़तरनाक होता है इसमें.''

''ओह वेरी सैड.....'' प्रतीक ने कहा.

लड़का उदास-सी हंसी हंसने लगा बोला, ''नो नो दिस इज लाइफ़ .....यह मेरी ज़िम्मेदारी है, इसने मेरा हाथ थामा था ...तब क्या पता था ...कोई बात नहीं ...चलता है ...और फिर जो होना होता है सर वो तो .....'' मैंने अचानक उसकी ओर मुड़कर देखा, तभी ....

....''मिस्टर संभव श्रीवास्तव''.....पियून ने आवाज़ लगायी ....''आपको डॉक्टर बुला रहे हैं...''

लड़का पत्नी की व्हील चेयर लेकर भीतर केबिन में चला गया.

❖❖❖

लघुकथा

'पड़ोसी-धर्म'

✍ डॉ. शुभदा पांडेय

'अच्छी बातें क्यों नहीं ख़बर बनतीं?'

'महानगरों के विषय में अक्सर यही छवि बनी रहती है कि लोग अपने पड़ोसियों का नाम तक नहीं जानते. वो भी मुंबई में, जिसे कोई 'मायानगरी' कोई 'पैसों की परी' की संज्ञा देता है.

ऐसे में पारिजात साहब का व्यवहार बार-बार यह सोचने को मजबूर करता रहा कि पड़ोसी-धर्म क्या होता है?

उनका मधुर स्वर में फ़ोन पर पूछना–''कौन बोल रही हैं?''

''सुनयना.''

''हां! नीरज साहब विदेश गये हुए हैं. दो महीने बाद लौटेंगे. मैं उनका पड़ोसी पारिजात बोल रहा हूं. दरअसल यह फ़ोन वे मुझे दे गये हैं, ताकि चाहने वाले निराश न हों, और आने पर उन्हें सारी गतिविधियां पता चल सकें. आप अपना नाम, पता व काम बता दें, ताकि आने पर उन्हें सब जानकारी सौंप सकूं.''

''अच्छा! तो आप पड़ोसी के लिए इतना कुछ करते हैं?''

''क्यों नहीं? यह अच्छाई मैंने उन्हीं से सीखी है. बहुत सक्रिय व सहयोगी हैं. कभी-कभी उनकी सकारात्मक लगनशीलता से अपने आप पर खीझ होती है. पर अभी मैं सीख रहा हूं.''

''मैं मणिपुर से बोल रही हूं.''

''अच्छा! मैं हिमाचल प्रदेश से हूं, और कुछ कहना है?''

''कहना तो उनके आलेख के विषय में बहुत कुछ था. पर... नहीं फिर कभी. -हां! ये ज़रूर कहिएगा कि आपके पड़ोसी बहुत अच्छे हैं.''

असम विश्वविद्यालय, शिलचर, असम-७८८०११.

लघुकथाएं

'उड़ा-उड़व्वल'

✍ पी. दयाल श्रीवास्तव

बच्चों में बच्चे बनकर खेलना कितना आनंद और कितना उल्लास देता है. मेरी भी बच्चों के साथ खेलने की आदत बचपन से ही रही है. बच्चा था तो बच्चों के साथ तो खेलता ही था अब वृद्धावस्था में भी बच्चों के साथ खेलने में अधिकतर समय बिताता हूं. दोपहर में खाना खाया कि बच्चे घेर लेते हैं दादाजी 'उड़ा-उड़व्वल' खेलते हैं. आज मैं फिर बैठ गया खेलने. इस खेल में सब बच्चे आलथी-पालथी मार कर बैठ जाते और अपने दोनों हाथ नीचे रख लेते. एक बच्चा पारी शुरू करता कहता 'तोता उड़,' और दूसरे बच्चे हाथ ऊपर कर देते. फिर बच्चा कहता 'कौआ उड़,' बच्चे फिर हाथ ऊपर कर देते. बच्चा फिर कहता 'घोड़ा उड़,' जिन बच्चों का दिमाग दुरुस्त रहता वे सतर्क रहते, वे हाथ ऊपर नहीं करते. कहीं घोड़ा भी उड़ता है. किंतु जिनके दिमाग में भूसा भरा होता वे हाथ ऊपर कर देते. सब बच्चे चिल्लाते–हार गये, हार गये, घोड़ा नहीं उड़ता, घोड़ा नहीं उड़ता. हारने वाले को पेनाल्टी लगती. सब बच्चे पेनाल्टी में उसे एक-एक घूंसा मारते.

उस दिन मैंने पहले कौआ उड़ाया. फिर बच्चे ने कहा- 'गधा उड़,' और ग़लती से मेरा हाथ ऊपर चला गया और मैं पकड़ा गया – दादाजी ने गधा उड़ा दिया, सब बच्चे ताली बजा बजाकर चिल्लाने लगे. दादाजी हार गये दादाजी हार गये. मैं सोचने लगा आजकल गधे ही तो उड़ रहे हैं आसमान में. बचपन में मेरे साथ पढ़नेवाले जितने भी साथी गधे थे वे आज सबके सब आसमान में उड़ रहे हैं. कोई मंत्री है, कोई विधायक है, और कोई-कोई बड़ा अफ़सर है. और मैं कौआ बना हुआ, कांव कांव करता हुआ कभी इस मुढेर पर तो कभी उस मुढेर पर फुदकता हुआ घूम रहा हूं. मैं सोच रहा था कि 'उड़ा-उड़व्वल' में मैं बिल्कुल भी नहीं हारा हूं. पूरी तरह से जीत गया हूं.

चाय की बिक्री

वह रोज बढ़िया से बढ़िया चाय बनाता किंतु देर रात जब ठेला समेटता तो मात्र सौ सवा सौ कप चाय के पैसे ही उसके खाते में होते. लोग कहते चाय वाला सफ़ाई से चाय नहीं बनाता. बैठने की व्यवस्था ठीक नहीं है. पढ़ने को अख़बार भी नहीं रखता.

चाय वाला सफ़ाई रखने लगा. बैठने के लिए चार कुर्सियां ले आया. एक लंबी बेंच डाल दी और एक अख़बार भी ख़रीदने लगा. फिर भी बिक्री ज्यों कि त्यों. कुछ दिन इंतज़ार करने के बाद उसने तरीका बदल दिया. और आज दुकान समेटने पर उसने पाया कि बिक्री में तीन गुना इज़ाफ़ा हो गया है. आज से उसने अपनी सहायता के लिए अपनी सोलह साल की बेटी को साथ रखना शुरू कर दिया था.

१२, शिवम, सुदामा नगर, छिंदवाड़ा-४८०००१.

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. - संपादक

कहानी

मुंसी ताऊ

✍ *अशोक वशिष्ठ*

मुंसी ताऊ. पूरा नाम मुंसीलाल वल्द बालूशंकर. उम्र पूरे दो कम सौ. उत्तर प्रदेश के जिला बुलंदशहर के गांव नवाब किसनपुर में आज़ादी से क़रीब तैंतीस साल पहले जन्म, जब बंगाल में अकाल पड़ा था. उठाऊ हाड़, गौर वर्ण, तीखे नैन-नक्श, कड़क आवाज़, ऊंचा क़द, रसिक मिज़ाज, पहनने-खाने के शौक़ीन, नब्बे बीघा जोत के मालिक, गांव की सोलह जातियों की क़रीब दो हज़ार से ज़्यादा आबादी के अग्रणी, हंसमुख, लोकगीत विशेषकर भगवान कृष्ण पर आधारित ब्रज के रसिया और होली गीत गाने में माहिर.

गांधी बाबा, पंडित नेहरू और इंदिरा गांधी के दर्शन कर चुके मुंसी ताऊ को जीवन का अनुभव इतना कि उड़ती चिड़िया को देखकर बता दें कि किस चिरौटे के साथ उसका नैन मटक्का चल रहा है.

गांव की कोई महफ़िल, कोई शादी-ब्याह, कोई जश्न मुंसी ताऊ के बिना अधूरा. गांव में रामलीला का आयोजन हो, पहलवानी अखाड़े का संचालन, नौटंकी-स्वांग तमाशा हो या अखंड रामायण और कीर्तन मुंसी ताऊ सबसे आगे.

अर्धांगिनी भूदेई (भूदेवी) ताई, गोरी-चिट्टी, अनपढ़, शरीर से थुलथुला, तीन गौर वर्णी बेटों और एक सुंदर कन्या को जन्म देने के बाद शरीर और थुलथुला गया. जहां बैठतीं वही बैठी रह जातीं. शऊर इतना कि न चोली की चिंता न दामन का होश.

पंद्रह वसंत पार करते-करते बेटी चंदा को ख़ुद मुंसी ताऊ ने अपनी आंखों से देख लिया एक भरी दोपहरी में पड़ोसी की दूकान से कपड़े ठीक करते हुए बाहर आते समय. तीन महीने बाद ही बारात आ पहुंची मुंसी ताऊ के द्वारे. हाथी, ऊंट, घोड़े, रथ, रम्या, बैलगाड़ियों में लदे फंदे बंदूकधारी बाराती. दो दिन ठहरी बारात. लगा जैसे पूरे गांव की बेटी थी चंदा. मुंसी ताऊ जगत ताऊ जो थे. मुंसी ताऊ ने गाड़ीवानों और घोड़ों के सईसों को लोहे की परात में दाना, पीतल की बाल्टी में गुड़ और पीतल के ही लोटे में सरसों का कड़ुआ तेल दिया, बैलों और घोड़ों को खिलाने के लिए. चंदा बेटी विदा हो गयी धूमधाम से.

ब्याह के साथ जो विदा हुई चंदा सो विदा हो गयी हमेशा के लिए. दोबारा बाप के घर की ड्योढ़ी न चढ़ सकी बेचारी. नाई भेजकर त्योहारों का चलन, छोछक, भात निभाते रहे मुंसी ताऊ.

मुंसी ताऊ खेतों पर ख़ुद काम न करते बल्कि नौकरों पर कड़ी नज़र रखते. कड़क आवाज़ और आंखों की तरेर के आगे नौकर फिरकनी से घूमते. ख़ुद चारजामा में चिकने

१५ अक्तूबर १९५३, धर्मपुर, बुलंदशहर (उ. प्र.)
एम. ए. (हिंदी, इतिहास, राजनीति शास्त्र), एम. एड.

लेखन : *कविता, लघुकथा, कहानी, सामाजिक एवं शैक्षणिक लेख.*

पुकाशन : *मुंबई के प्रथम हिंदी सांध्य दैनिक 'निर्भय पथिक' में लगातार दस वर्षों तक सामयिक विषयों पर आधारित छः पंक्तियों की छंद 'खरी-खरी' का प्रकाशन.*

संपादन : *'विधायक गुरू' एवं 'राष्ट्र आराधक' ग्रंथों का संपादन.*

संप्रति : *स्वामी विवेकानंद कनिष्ट महाविद्यालय (कुर्ला-मुंबई) के प्रधानाचार्य पद से निवृत्ति के बाद वर्तमान में स्वतंत्र लेखन*

सी-६०३, सागर रेसीडेंसी, सेक्टर-२७, नेरुल (पूर्व), नवी मुंबई- ४००७०६

चुपड़े बने रहते.

मुंसी ताऊ का सबसे छोटा बेटा पढ़ लिख कर बन गया ओवरसीयर और जा बसा शहर में, बड़ा बेटा कन्हैया बन गया स्कूल मास्टर, मंझला बेटा बिरजू रह गया आठवीं फेल.

मझले बेटे की घरवाली ने जब पुत्र को जन्म दिया तो एक बार फिर जश्न मना मुंसी ताऊ के घर, थाली बजी, तासे बजे और बताशे बंटे. नामकरण के दिन बड़ी जोर की ज्योनार (दावत) हुई. पूरा गांव न्योता गया. सवेरे से लेकर देर रात तक पंगत में बैठकर खाते रहे लोग. जो भी राहगीर उस दिन गांव से होकर गुज़रा, बिना दावत खाये न जा सका.

एक-एक कर पांच नातियों का मुख देखने का सुख मिला मुंसी ताऊ को.

चौथे नाती के जन्म के समय तक ताऊ हो गये साठा. साठा सो पाठा, मुंसी ताऊ की जवानी और उनके जोश में कोई कमी नहीं आयी. फिर जश्ने दावत. गांववालों और राहगीरों ने फिर पूरी मिठाई खायी.

उत्सव के दूसरे दिन एक अजब बात हुई. एक अधेड़ उम्र की बैयरबारिन (महिला), आन गांव की, मानसिक रूप से कमज़ोर, गदराये बदन की, मैली-कुचैली धोती में देखी गयी मुहल्ले में. पता चला एक दिन पहले हुई दावत का स्वाद उसने भी चखा था. शायद कई दिन बाद भरपेट खाया था उसने.

मुहल्ले भर में चख़-चख़ शुरू हो गयी. उसे भगाया गया. दुत्कारा गया. लेकिन मुंसी ताऊ की ड्योढ़ी छोड़ने को वह राज़ी न हुई. जाड़े के दिन, एक अबला को कहां धकेला जाये? पिघल गये मुंसी ताऊ. जहां गाय, बैल, भैंस बांधे जाते थे मुंसी ताऊ के उसी घेर की दुबारी में उस पगली के रहने का इंतज़ाम कर दिया गया. पुआल और ईख की सूखी पताई नीचे बिछाकर फटी-पुरानी बोरियां डाल दी गयीं. ऊपर से एक पुरानी रजाई, पुरानी थाली, लोटा आदि दिये गये. बस गयी वह पगली मुंसी ताऊ के घेर में.

मुहल्ले भर की औरतों ने मिलकर उसका नाम रख दिया भूदा बाबरी. कोई उसे सरसों का कड़ुआ तेल दे गयी, कोई पुरानी ककई (कंघी), कोई अपनी पुरानी धोती, तो कोई अपनी अंगिया.

भूदा बाबरी ऊंचे हाड़ की, गोरी चिट्टी, स्वस्थ चालीस के पेढे की कोई जाटनी सी लगती. टूटी-फूटी बोली में ख़ुद को न समझ आने वाले किसी गांव की ठकुराइन बताती.

कुछ ही दिनों में भूदा बाबरी साफ़-सुथरी रहने लगी. मुल्तानी मिट्टी से सिर धोती, साबुन की बट्टी से नहाती-धोती, रेह मिट्टी से कपड़े धोती, तेल चुपड़ती, कंघी करती, सलीके से धोती पहनने की कोशिश करती. कोई जो भी दे जाता खाती और सो रहती. कभी किसी पर पत्थर मारने या किसी को गरियाते किसी ने नहीं देखा. गांव में कोई बालक जन्म लेता तो अवश्य ही भूदा की गोद में रखकर उसका आशीष लिया जाता.

मुहल्ले भर में चर्चा रहने लगी कि मुंसी ताऊ कुछ ज़्यादा ही मेहरबान हो गये थे भूदा बाबरी पर. मुंसी ताऊ जब भी सामने से गुज़रते भूदा उन्हें देखकर अजीब-सी हंसी हंसती और घूंघट निकाल कर देखती रहती जब तक मुंसी ताऊ आंखों को दिखाई देते.

कुछ ही हफ़्तों में ग़ज़ब की ख़बर जंगल में आग की तरह फैल गयी पूरे गांव में. भूदा बाबरी के पेट पर मांस चढ़ आया. वह अक्सर पेट पर हाथ फेरती और अजीब सा भाव आता उसके चेहरे पर.

कुछ दिनों तक मुंसी ताऊ और भूदेई ताई में बड़ी खटपटी रही. मुहल्ले की औरतों ने सुना भूदेई ताई को मुंसी ताऊ के साथ हुई लड़ाई में कहते कि भूदा बाबरी के साथ जो हुआ उसके ज़िम्मेदार मुंसी ताऊ ही थे.

लेकिन मुंसी ताऊ के चेहरे पर शिकन तक नहीं. एक सुबह होने से पहले धुंधलके में बड़ी बहू ने देखा अपने ससुर को. अचके-से घेर की दीवार लांघ कर आते हुए. तभी भूदा बाबरी की चीखें सुनायी दीं. मुहल्ले में कोहराम मच गया. आंखें-मीड़ते हुए मुहल्ले के लोग-लुगाई इकट्ठा हो गये. भूदा बाबरी के कपड़े ख़ून से तर थे. मांस का एक लोथड़ा वहीं पुआल पर पड़ा था. रोते-रोते अचानक हंस पड़ती थी भूदा बाबरी. भूदा बाबरी को किसी ने लात मारी थी. जंगल जाने के लिए जो बाहर निकली तो फिर वापस नहीं आयी भूदा बाबरी उस गांव में. चली गयी वह हमेशा के लिए गांव छोड़कर. कुछ ने राहत की सांस ली तो कुछ की आंखें नम हो गयीं.

अगले ही दिन न जाने किस बात के बहाने दोनों बेटों ने जमकर कूट दिया मुंसी ताऊ को. मारे शर्म के कुछ दिन केवल जंगल झाड़े के लिए घर से बाहर निकले मुंसी ताऊ.

मुंसी ताऊ जेठ का दशहरा नहाने गये गंगाजी. दो दिन बीते, चार दिन गये, पखवाड़ा गुज़र गया, महीना बीता मगर मुंसी ताऊ वापस नहीं आये. गांव-गांव भिक्षाटन करने वाले एक फ़क़ीर से पता चला कि कर्णवास में गंगा

तट पर बने एक आश्रम में किसी साधु के साथ रहने लगे थे मुंसी ताऊ.

गेरुआ बाना, गले में मोटी सी माला, गंगा स्नान, मंदिर में ध्यान और चिलम पान करने लगे मुंसी ताऊ. कोई दो साल बाद लौटे मुंसी ताऊ साधु के वेष में. कुछ दिन गांव में रहे और फिर चले गये गंगा घाट. इसी तरह उनका आना-जाना लगा रहा.

आज़ादी से पहले और आज़ादी के बाद कई वर्षों तक मुंसी ताऊ भोर हुए गांव के अपने अन्य साथियों और बच्चों की टोली लिये प्रभात फेरी लगाया करते थे. पूरे गांव में — 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहां जो सोवत है.... , वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्तव्य मार्ग पर डंट जावें...., गांधी बाबा की जय... नेहरूजी की जय... भारत माता की जय..., वंदे मातरम्' के नारे लगवाते.

पंद्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी के दिन स्कूली बच्चे जब तिरंगा लहराते गांव में फेरी लगाते तो मुंसी ताऊ का उत्साह देखते बनता. मुंसी ताऊ अपने बैठक ख़ाने के चबूतरे पर मूढ़ा लगाये बैठते और बच्चों को बूंदी बांटते और गुड़-शक्कर का शरबत पिलाते.

पक्के कांग्रेसी विचारधारा के थे मुंसी ताऊ. गांव से चार कोस दूर नरौरा परमाणु केंद्र का उद्घाटन करने जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी आयी थीं तो गांव के नौजवानों की एक टोली लेकर गये थे मुंसी ताऊ इंदिरा के दर्शन करने. उस दिशा में जहां इंदिरा गांधी मंच पर बैठी थीं, अपनी जगह बैठे-बैठे ही धोक लगायी थी मुंसी ताऊ ने. १९७१ के बंगलादेश स्वतंत्रता आंदोलन के बाद मुंसी ताऊ इंदिरा गांधी को शेरनी, मां दुर्गा, भारतमाता की उपाधि दिया करते थे. मगर फिर क्या हुआ पता नहीं १९९२ आते-आते मुंसी ताऊ कांग्रेस के घोर विरोधी हो गये. यूं इमरजेंसी काल में भी इंदिरा और संजय को कोसा करते थे मुंसी ताऊ.

साठ के दशक में मेरठ के नौचंदी मेले में पहली बार मुंसी ताऊ ने देखा एक बड़ा सा डिब्बा जिस पर फ़िल्मी गाने पर थिरकती हुई लड़की को देखकर दंग रह गये थे मुंसी ताऊ. पांच रुपये का टिकट लेकर तीन फ़िल्मी गानों पर एक दूसरे कमरे में नाचती थीं लड़कियां और कैमरे की मदद से नाचती लड़कियों को दिखाया जाता था टेलिविज़न पर. 'पान खाये सैंया हमारो...', 'हम तुम चोरी से बंधे एक डोरी से', आदि गाने तभी से गुनगुनाने लगे थे मुंसी ताऊ.

गांव में जब स्कूल का विस्तार करने की बात आयी तो स्कूल कमेटी के सदस्य मुंसी ताऊ ने एक नायाब सुझाव दिया. इधर-उधर चंदा मांगने के बजाय नौटंकी कंपनी को बुलाया जाये और सात-आठ दिन नौटंकी का तमाशा करवाया जाये. मुंसी ताऊ की बात काटे तो कौन! ख़ुद मुंसी ताऊ ने आगे बढ़कर नौटंकी कंपनी से संपर्क किया और गांव के स्कूल के पिछवाड़े बने खेल अहाते में गड़ गया तंबू नौटंकी वालों का.

दिन में स्कूल में पढ़ाई होती और रात में पूरा गांव, स्कूल के मास्टर और बच्चे तमाशा देखते टिकट लेकर. चार नचनियां आयी थीं नौटंकी कंपनी में. मुंसी ताऊ इन दिनों बहुत व्यस्त हो गये थे. कंपनी के खाने-पीने के इंतज़ाम से लेकर रात को होने वाले तमाशे की व्यवस्था के मुखिया मुंसी ताऊ ही थे. आटा, दाल, गुड़, तेल, लकड़ी, कंडा सब मुंसी ताऊ के यहां से मुफ़्त मुहैया करवाया गया. नहा-धोकर सवेरे से ही मुंसी ताऊ अफ़गान स्नो क्रीम चुपड़ कर भक्क सफ़ेद धोती-कुर्ता पहनकर पहुंच जाते कंपनी के तंबू में. पूरे ग्यारह दिन रही नौटंकी कंपनी गांव में. अच्छा पैसा जमा हुआ. मुंसी ताऊ चौमासे तक तरोताज़ा बने रहे.

१९६२ में चीन के साथ और १९६५ में पाकिस्तान के साथ हुई लड़ाई के दौरान देश में अमन-शांति बनी रहे इसके लिए दोनों बार पी.ए.सी. की टुकड़ियां गांव में आकर रहीं. गांव के पूर्वी छोर पर ब्राह्मण टोले के क़रीब बने मंदिर के अहाते में तंबू लगाये पी. ए. सी. वालों ने. मुंसी ताऊ यहां भी सबसे आगे. पूरे गांव की सोलहों जातियों के घर-घर जाकर फ़रमान सुनाया मुंसी ताऊ ने कि पी. ए. सी. वाले हमारी रक्षा के लिए आये हैं सो उनके खाने-पीने में कोई कमीबेसी नहीं रहनी चाहिए. कुछ तो बात थी मुंसी ताऊ में कि सब पर उनकी बातों का असर होता. मुंसी ताऊ ने फिर अपने अनाज भंडार खोल दिये.

मुंसी ताऊ सांझ और सवेरे अपने रिकॉर्ड-प्लेयर पर एच.एम.वी. के तवा रिकॉर्ड बजाते और पूरे गांव में देश-प्रेम के गीतों की लहरी फैल जाती.

बसंत पंचमी से लेकर होली वाले दिन तक गांव में एक मस्ती सी छायीं रहती. रात को खाना खाने के बाद से

होली के लोकगीतों का जो सिलसिला शुरू होता वह देर रात गये तक जारी रहता.

नारायन टेलर मास्टर अपने हारमोनियम पर धुन छेड़ते, बिल्ला मल.. कढ़ेरे अपनी ढोलक पर थाप देते, अब्दुल तेली खंजरी बजाते, सज्जाद मंजीरा और उनके बड़े भाई अहमद चीमटा बजाते. छिट्टू तेली, मुल्लाजी, पंडित ओमजी, स्वामीजी, लाला लीलाधर और मुंसी ताऊ ब्रज की होली के गीत गाते. ख़ासकर ये होली गीत केवल मुंसी ताऊ ही उठाते. 'आज बिरज में होरी मेरे रसिया...', 'कान्हा के हाथ पिचकारा सोहे, राधा के हाथ कमोरी मेरे रसिया...'

पी. ए. सी. के जवान भी गांव के होली गीतों का आनंद लेते और गुड़ की बनी चाय की चुस्कियां लेते.

होली के दिन मुंसी ताऊ और पंडित रामाशंकर स्वामीजी टेसू के फूलों का बसंती ख़ुशबूदार पानी बाल्टी में भरते और जा पहुंचते हरिजन टोले में. अपनी बाल्टी से उस टोले में मर्दों पर रंगीन ख़ुशबूदार पानी फेंकते और टोले के मर्द इनके पैरों पर गुलाल डालकर इनका आशीष लेते. उस दिन जाति-धर्म, ऊंच-नीच, छूत-अछूत, ग़रीब-अमीर की बेड़ियां थोड़ा शिथिल पड़ जातीं.

लेकिन ये बातें साठ, सत्तर के दशकों की हैं. अब सब बदल चुका है. जितनी तेज़ी से शहरों का विस्तार हुआ है उतनी ही तेज़ी से गांवों का बिखराव हुआ है. वह गांव जो पहले सोलह जातियों के लोगों को अपने अंदर समाहित करता था वह गांव अब सिसक रहा है अपने अस्तित्व के लिए. सारा ताना-बाना टूट गया है. जिस गांव में पहले केवल टेरीकॉट और टेरिलीन तथा सफ़ेद लट्ठे का कपड़ा, नमक, दियासलाई और हल्दी शहर से आया करती थी, बाक़ी सब गांव के खेतों में पैदा होता था, वह गांव अब मोहताज हो गया है खेतों में पैदा होने वाली मौसमी तरकारी के लिए.

परिवार बिखर गये हैं. खेत भाइयों और बेटों के बीच बंटते-बंटते क्यारीनुमा रह गये हैं. १९९२ में हुए अयोध्या कांड के बाद गांव के प्राय: सभी मुसलमान अलीगढ़ जा बसे हैं. केवल सौराज मियां रह गये हैं गांव में. काम वही सायकल के पंचर जोड़ना. राजुद्दी लोहार भी अपनी वृद्धावस्था काट रहे हैं गांव में.

गांव के चारों ओर बने पांच बड़े-बड़े तालाब न जाने नक्शे से कैसे ग़ायब हो गये हैं? गांव में जहां सात कुएं हुआ करते थे वे सबके सब सूख गये हैं. सरकारी नलों से पानी भरा जाता है. बिजली है लेकिन अधिकृत कनेक्शन दो-चार ही हैं. बाकी कांटा डालकर चोरी से पूरे गांव में बिजली जलती है. बैलों की खेती का चलन बंद हो गया है. ट्रैक्टर से सब काम होते हैं. गांव के युवा और अधेड़ निठल्ले और बेरोज़गार हैं. विवाह योग्य लड़कों की जवानी ढलती जा रही है. कोई अपनी बेटी देने को तैयार नहीं है निकम्मों को. गांव में शराब का ठेका खुल चुका है सो घर-घर, गली-गली कलह, मारपीट, छीना-झपटी, चोरी-चकारी, छेड़छाड़ बढ़ गयी है. छोटे-छोटे मामले पुलिस चौकी तक जा पहुंचते हैं. आपसी भाई-चारा, लाज-शर्म नाम की चीज़ बाकी नहीं रह गयी है.

मुंसी ताऊ ने यह बदलाव अपनी आंखों के आगे होते देखा है सो बड़ी तकलीफ़ महसूस करते हैं.

गर्मी से भरे मई महीने में इस बार दस दिन बंधकर गांव में रहने का मौक़ा मिला तो मुंसी ताऊ की हालत देखकर उनसे बातें कर रोना आ गया.

वह मुंसी ताऊ जो स्तंभ की तरह अचल और मज़बूत दिखायी देते थे, वही मुंसी ताऊ पिछले तीन-चार साल से गठिया से ग्रसित हैं. खाट पकड़ ली है. दैनिक क्रियाएं करना भी मुश्किल हो गया है. बातें करते-करते धोंकनी-सी चल जाती है छाती में. पुरानी बातें याद कर आंखों की कोरों में नमी आ जाती है. दोनों बेटों के यहां से बारी-बारी चाय, रोटी-सब्ज़ी आ जाती है दोनों टाइम.

जिसको मुंसी ताऊ की ड्योढ़ी चढ़ना मना थी वही चंदा बेटी अपने ब्याह के पचपन साल बाद अपने बापू की सेवा-टहल करने आ गयी है. मुंसी ताऊ की अर्धांगिनी को परलोक सिधारे दो दशक बीत चुके हैं. बेटी से सेवा-टहल करवाना अच्छा तो नहीं लगता लेकिन क्या करें मुंसी ताऊ? बेटे और नाती-पोते सुनते ही नहीं हैं उनकी. ताऊ की उम्र का कोई और नहीं रहा है गांव में. कभी-कभार राजुद्दी लोहार और ठाकुर जयसिंह आकर बतिया जाते हैं. दोनों क़रीब सात-आठ साल छोटे हैं मुंसी ताऊ से.

मैं उनके पास से उठने लगा तो बोला, ''ताऊ, आप ठीक हो जायेंगे. हिम्मत मत हारिए, अगली बार आऊंगा तो रोज़ आपके पास घंटों बैठा करूंगा. आप सौ साल जियेंगे.'' मुंसी ताऊ के पैर छुये और चलने लगा. देखा मुंसी ताऊ के चेहरे पर फीकी-सी मुस्कान थी. इतना तो वे भी जानते थे कि सौ साल पूरे होने में अब दिन ही कितने बचे हैं?

❖❖❖

कहानी

युगांत

✍ महेश कटारे 'सुगम'

महेश कटारे 'सुगम'

२४ जनवरी १९५४;
ललितपुर (उ. प्र.) जिले
के पिपरई गांव में.

प्रकाशन : *हंस, साक्षात्कार, प्रयोजन, वर्तमान साहित्य, सरिता, अभिनव प्रयास, साहित्य सरोवर, भू-भारती, देश का संदेश, कहानियां मासिक चयन, सुमन सौरभ, लोटपोट, पराग, चकमक, सहेली, देवपुत्र, अनामा, कथाबिंब, समाज कल्याण, प्रेरणा, शुचिप्रिया, इंगित आदि हिंदी भाषी पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर रचनाओं का प्रकाशन. प्यास (कहानी संग्रह), गांव के गेंवडे (बुंदेली ग़ज़ल संग्रह), हरदम हंसता गाता नीम (बाल कविता संग्रह), तुम कुछ ऐसा कहो (नवगीत संग्रह), वैदेही विषाद (लंबी कविता),*

पुरस्कार : *स्वदेश (राम नारायण शास्त्री) कथा पुरस्कार, स्व. बिजू शिंदे कथा पुरस्कार, स्व. अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार, कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार, पत्र पखवाड़ा*

'रा'नी बऊ मर गयी' ये ख़बर मैंने बिस्तर पर ही सुनी. आंखें और मुंह एक पल के लिए खुले के खुले रह गये. आप सोच रहे होंगे कि रानी बऊ के मरने की ख़बर में आख़िर ऐसा क्या है? मरते तो सभी हैं. रानी बऊ की मौत में आख़िर ऐसी कौन सी विशेषता है जिसे इतना विस्तार दिया जा रहा है.

तो मैं आपको इतना बता देना चाहता हूं कि कहने-सुनने में तो मौतें एक जैसी लगती हैं. लेकिन सभी मौतें एक जैसी होती नहीं है. शायद आल्हा-ऊदल की लड़ाइयों में आपने भी पढ़ा होगा- ''रण में लड़के क्षत्री मरवै, खटिया पड़कें मरै बलाय.'' भांति-भांति की मौतों का उल्लेख आपने कई बार सुना होगा. देश पर मर मिटनेवाले शहीद कहलाते हैं. दूसरों के दिलों में आतंक और नफ़रत फैलानेवाले जब मरते हैं तो उन्हें आतंकी की संज्ञा दी जाती है. शहीद की मौत पर लोग आंसू बहाते हैं तो आतंकी की मौत पर ख़ुशी मनाते हैं.

तो रानी बऊ की मौत भी गांव वालों के लिए एक हादसे से कम न थी. वैसे उनकी उम्र नब्बे के ऊपर ही रही होगी. लेकिन फिर भी गांव वाले उनकी उपस्थिति को अच्छी नज़र से ही देखते.

रानी बऊ हमारे घर के सामने ही दूर एक छोर पर रहती थीं. और उन्होंने अपने जीवन के नब्बे से ऊपर बसंत और पतझड़ भी देखे थे. माफ़ करना इतना लंबा समय उन्होंने देखा नहीं था, जिया था. देख तो वे सकती ही नहीं थीं. क्योंकि अट्ठाईस वर्ष की उम्र में उनकी आंखों की रोशनी चली गयी थी. लो मैं फिर भूल गया. उनकी आंखों की रोशनी गयी नहीं थी. उन्होंने रोते-रोते खो दी थी. पति के मरने पर तीन महीने तक अनवरत रोते-रोते. रोशनी की फिर एक किरण तक न उनकी आंखों में आयी और न उनकी ज़िंदगी में. सारी दुनिया एक अंधकार का पिंड बनकर रह गयी थी. सारी दुनियां नहीं सारा गांव. हां, गांव ही तो उनके लिए सारी दुनियां थी. ससुराल से तीन कोस पर मायका. यदि कभी दुनियां की व्यापकता का अंदाज़ा लगाया भी तो इन्हीं तीन कोस तक. इसके आगे पीछे कहां क्या था कैसा था, नहीं मालूम.

जीवन के पिछले चालीस साल से मैं रानी बऊ को जानता हूं. जबसे होश संभाला रानी बऊ को गांव, मुहल्ले में लकड़ी के सहारे घूमते हुए पाया. पिछले एक-डेढ़ साल से भटकते हुए. जीवन के आख़िरी दिनों में वह राह चलते हुए अक्सर भटक जाया करती

थीं. उन्हें ख़ुद इस बात पर अफ़सोस होता कि अंत समय में स्मृति ने भी उनका साथ छोड़ दिया है. इसीलिए जाना तो चाहती दद्दू के यहां और पहुंच जातीं कक्कू के यहां.

ज़िंदगी का लंबा अंधेरा रास्ता उन्होंने एक लाठी के सहारे टटोल–टटोल कर पार किया. कभी-कभी दूसरों की आंखों का सहारा भी संबल बना जाता है. लेकिन उनके पास तो कोई तीसरी आंख भी नहीं थी. न कोई औलाद, न कोई रिश्तेदार. हां, यदि कुछ ज़मीन, जायदाद भी होती तो भी उम्मीद होती कि उसके लालच में कोई दूर का रिश्तेदार भी अपना ख़ास बनकर आ धमकेगा. मगर ऐसा कुछ भी तो नहीं था रानी बऊ के पास.

सांवली सूरत लेकिन तीखे नाक नक्शवाली सुघर रानी बऊ अक्सर मेरे द्वार के सामने नीम की छाया में आकर बैठ जाया करतीं. आंखों को ढंकता हुआ घूंघट, पिंडलियों तक चढ़ी धोती. कभी फटा ब्लाउज, तो कभी उधारी, लेकिन धोती से ही पूरे पेट, पीठ को ढंके हुए. एक हाथ में लाठी, एक हाथ में चमकता हुआ पीतल का लोटा. लोटा इसलिए कि उन्हें खांसी का ठसका कभी भी चल उठता, जिसे वे पानी पीकर शांत करतीं.

रानी बऊ का हमारे यहां बहुत उठना-बैठना होता. घरवालों की पूरी सहानुभूति उनके साथ. इसके बावजूद मैंने उन्हें कभी कुछ भी मांगते नहीं देखा. अव्वल तो वे किसी के यहां कुछ खाती-पीती नहीं. लेकिन यदि कोई उन्हें कुछ देने का विशेष अनुग्रह करना भी चाहे तो वह किसी के दरवाज़े पर कभी कोई अनुग्रह नहीं स्वीकारतीं. सभी लोग उनकी इस आदत से भली भांति परिचित थे. इसलिए जिसे भी जो कुछ देना होता उनके घर पर ही जाकर देता.

यह बात उन दिनों की है जब गांवों में बिजली नहीं थी. सड़कें नहीं थीं. घर-घर हाथ की चक्की से ही आटा पीसा जाता. इसलिए रानी बऊ के यहां पिसवाने वालों की भीड़ लगी रहती. उनकी हाथ चक्की कभी भी वक़्त-बे-वक़्त चल उठती. वक़्त की चक्की में पिसने वाली रानी बऊ दुखी, बीमारों, दुर्बलों का एक मात्र सहारा बन सबके गेहूं पीसतीं और बदले में पातीं किसी से खोवा दो खोवा चून या दो चार आने का सिक्का. इसी से उनका गुज़ारा होता. और इसी से जीवन गति पाता. रानी बऊ के लिए सहानुभूति रखने वालों की कमी नहीं थी गांव में. वे मांग कर जीवन यापन करने के बारे में सोच लेतीं तो भी उनका जीवन आराम से कट सकता था. लेकिन उन्होंने ऐसा कभी नहीं सोचा. पीसने जैसे कष्ट साध्य श्रम को भी अपना कर उन्होंने अपना स्वाभिमान ज़िंदा रखा.

मुझे कई बार रानी बऊ के घर जाने का अवसर मिला. हर बार मैं देख कर आश्चर्य से ठगा रह जाता. उनके घर में कूड़ा-कचरा कभी देखने को नहीं मिला. दूसरे, चौथे रोज़ अपने घर को लीपना, चूल्हे को रोज़ पोतना, बर्तनों को रगड़-रगड़ कर मांजना उनके नित्य कर्म में शामिल था. सभी की सुबह अपने-अपने तरीक़ों से होती है. किसी की एलार्म से, तो किसी की चाय की चुस्कियों से. किसी की प्यार भरे चुंबनों से तो किसी की डांट फटकार से. लेकिन रानी बऊ की सुबह कुएं में बुड़-बुड़ करते किसी बर्तन की आवाज़ से. जैसे ही रानी बऊ इस आवाज़ को सुनतीं, बिस्तर छोड़ देतीं. अपनी मंछोली बाल्टी को हाथ में लटकाये लाठी टेकती हुई पहुंच जातीं पास ही बने हुए कुएं पर. पानी भरने वाला उनकी बाल्टी भर देता और वे उठाकर वापस अपने घर आ जातीं. इस तरह चार-छः चक्कर लगाकर अपना पूरा पानी भरतीं, नहातीं, खाना पकातीं, खातीं और निकल पड़तीं गांव में चक्कर लगाने. यही तो था उनका रोज़ का क्रम. शाम सुबह रोज़ मंदिर

दूरदर्शन पुरस्कार, जयशंकर प्रसाद कथा पुरस्कार, डॉ. राकेश गुप्त कविता पुरस्कार आदि.

प्रसारण : *आकाशवाणी भोपाल एवं ग्वालियर से रचनाओं का प्रसारण*

सम्मान : *स्व. मुकीम पटेल 'रासिख' स्मृति सम्मान, रंभा श्री सम्मान. आर्य स्मृति सम्मान शब्द सारथी सम्मान.*

विशेष : *रत्न सागर प्रकाशन दिल्ली द्वारा प्रकाशित माध्यमिक पाठ्यक्रम के छठे भाग में 'बंजारे' नामक कविता संग्रहीत. हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम बुंदेली ग़ज़ल विधा के रचनाकार.*

संप्रति : *स्वास्थ्य विभाग (मध्य प्रदेश) में प्रयोगशाला तकनीशियन.*

काव्या, चंद्रशेखर वार्ड,
बीना, जि.-सागर (म.प्र.)
मो. ९७१३०२४३८०

की सीढ़ियों पर बैठा देखा जा सकता था उन्हें.

रानी बऊ सुनती अधिक थीं, बोलती बहुत ही कम. दिन भर न जानें किन विचारों को मन ही मन आगे बढ़ाती रहतीं. उनकी बातों से यह अंदाज़ा सहज ही लगाया जा सकता था कि उन्हें जीवन के प्रति न तो मोह है और न ही विरक्ति. हां, कभी-कभी उसांस छोड़ते हुए बुदबुदाती- 'हे राम अब तो उठा लो.'

लेकिन भगवान भी अजीब है. जिसे जो चाहिए होता है उसे वह चीज़ कभी नहीं देता. वह तो परीक्षाओं में विश्वास करता है. कठिन से कठिन परीक्षाएं लेता है. ऐसी परीक्षाएं जिन में व्यक्ति हार जाये. और वह जीत जाये. यही जीत उसको भगवान बनाती है. उसे ख़ुश करती है. लोगों को दीन बनाकर वह दीनबंधु का ताज अपने सर पर पहनता है.

ऐसी ही परीक्षा रानी बऊ की ली गयी. जिसने उन्हें गहरे संकट में डाल दिया. एक दिन राह चलते-चलते बाहर निकले एक छप्पर से वह टकरा गयीं. छप्पर में लगी लकड़ी उनकी नाक को छील गयी. दवा के अभाव में घाव विकृत हो गया. मवाद पड़ गया. यहां तक कि कीड़े भी. रानी बऊ कीड़ों को त्वचा पर फैली संवेदनाओं की आंखों से देखतीं और फिर हाथ से पकड़कर फेंकतीं. घाव साफ़ करतीं.

कुछ दिनों की मेहनत मशक्कत के बाद घाव तो ठीक हो गया, लेकिन नाक का अग्र भाग विकृत हो गया. रानी बऊ को नाक से क्या लेना देना, लेकिन अब उनका घूंघट नाक को ढकने लगा था. वह बार-बार घूंघट और नाक को स्पर्श कर आश्वस्त होतीं कि उनकी नाक ढकी है.

दो दिन पहले की घटना मेरी आंखों के सामने नाच उठी. मैं सुबह ही रानी बऊ के यहां जा पहुंचा था. सर्दी उस दिन भी थी. रानी बऊ चक्की चला रही थीं. स्थिर पत्थर के पाट पर दूसरा पाट धीरे-धीरे घूम रहा था. गेहूं पिस पिसकर आटा बन रहे थे. उनका सधा हुआ हाथ चलती चक्की के मुंह में गेहूं के दानों को डालता, एक हाथ थकने पर वे दूसरे हाथ से चक्की चलाने लगतीं. मैं काफ़ी देर तक उन्हें हाथ बदल-बदल कर चक्की चलाते देखता रहा. उनके बारे में जाने क्या-क्या सोचता रहा.

उनके कानों की आंखों ने मुझे देख लिया था. चक्की रोक कर पूछा- ''को है.''

''रानी बऊ हम हैं.''

वह मुझे पहचान चुकी थीं. पसीना उनके ललाट पर छोटी-छोटी बूंदों के रूप में आ जमा था. यही कारण था कि सर्दी होते हुए भी वह सर्दी से अप्रभावित थीं.

तभी उन्होंने अचानक उठकर दीवार पर टंगी पोटली को टटोला. फिर गठरी को नींचे उतारकर दो धोतियां निकाल कर मेरी ओर बढ़ा दीं. मैंने उनके चेहरे के भावों को पढ़ा, उनकी आंखों में सुख और संतोष की एक चमक फैली हुई थी.

''धोती तौ अच्छी हैं रानी बऊ.'' मैंने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा.

''ठीक हैं बेटा. हमें कुन कोऊखों दिखाने यां हैं. आंग ढांकनें हैं बस, और का करनें.''

मुझे वे धोतियां, धोतियां न लगकर पसीने का समंदर जान पड़ीं. जो रानी बऊ के खून से रिस रिस कर बना था. □

सूर्य चमक उठा है. किरणों ने सर्दी के प्रभाव को कुछ शांत कर दिया है. लोग रानी बऊ के घर की ओर बढ़ते जा रहे हैं. मैं भी घर से निकलकर लड़खड़ाते क़दमों से भीड़ में शामिल हो गया हूं.

रानी बऊ की मौत पर आंसू बहानेवाला कोई नहीं है. लेकिन एक युग आज फूट-फूट कर रो रहा है. उनके मरते ही युग भी अपने मरने का इंतज़ार कर उठा है. रानी बऊ में तीन पीढ़ियों का समावेश था. वह तीन पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करती थीं. गांव अपने सबसे बड़े बूढ़े की मौत के सदमे में डूबा हुआ है.

मैंने गठरी खोलकर दोनों नयी धोतियां निकाल लीं. एक बिछा दी, दूसरी रानी बऊ के शव पर ओढ़ा दी. सारा गांव इकट्ठा हो चुका है. चार लोगों ने शव को कंधे पर उठा लिया है. सभी लोग अपने-अपने घर से कंडे, लकड़ियां साथ लाये हैं. आगे चलने वाला एक आदमी कह रहा है- ''राम नाम सत्य है.''

पीछे चलनेवालों का समवेत स्वर गूंज रहा है- ''सत्य बोला गत्त है.''

भीड़ मरघट की ओर बढ़ती जा रही है. सभी लोग बारी-बारी से रानी बऊ की अर्थी को कंधा देने के लिए व्यग्र हैं.

❖❖❖

तीन कविताएं

✍ गिरीश चंद्र श्रीवास्तव

बिजूका

डर कर भागते हैं,
पशु-पक्षी
खेतों में देख कर बिजूका,
आदमी के रूप-रंग जैसा
क्या इतना ही होता है
आदमी डरावना?

ईर्ष्या

बबूल का पेड़,
जल गया देख कर
छतनार बरगद,
कितना सघन है,
कितना छायादार है,
सोच-सोच
कुढ़ता रहा मन ही मन,
और उग आये
अंग अंग में कांटे !

काला-सफ़ेद

मैंने कभी नहीं कहा
काले को सफ़ेद
अथवा सफ़ेद को काला,
मैंने सदा माना
काला सफ़ेद नहीं होता
सफ़ेद काला नहीं होता,
किंतु
लोग बात-बात में
सफ़ेद को काला
और काले को सफ़ेद बनाने में
लगे रहते हैं,
और मैं दूर खड़ा
सफ़ेद को पिटता
काले को जीतता
देखता रहता हूं.

✉ एफ/३०१, अंसल प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट,
२८, सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद-२११००१

ग़ ज़ ल

डॉ. नलिन

और पीछे हो गये,
बैठ कर भी खो गये.
सांस के संसार में,
सांस रोके सो गये.
आ रहे पल जा रहे,
फिर पराये हो गये.
और के होने चले,
पर स्वयं के हो गये.
खेत को जोता नहीं,
बीज सारे बो गये.
अंत में गंगा नहा,
पाप सारे धो गये.
भोर के साथी 'नलिन'
रात के संग हो गये.

चार दिन प्रतिकार करते हैं,
फिर वही स्वीकार करते हैं.
और होंगे लोग जो मन की,
राख को अंगार करते हैं.
पीर वे देते रहे हैं, हम–
रात–दिन जयकार करते हैं.
आज मित्रों को हुआ है क्या!
नित नया व्यवहार करते हैं.
क्यों न मानें आपको छोटा,
आप सबसे प्यार करते हैं.
खा रहे भय क्रोध के आगे,
क्यों सुनिश्चित हार करते हैं.
शस्त्र ले आता 'नलिन' कोई,
लेखनी पर धार करते हैं.

✉ ४. ई.६. तलमंडी, कोटा-३२४००५(राज.)

कहानी

शिनाख़्त

✍ *अशोक कुमार प्रजापति*

२५ जनवरी १९६२;
अमहारा/बिहटा (बिहार);
शिक्षा : बी. एस-सी.
(गणित ऑनर्स)

लेखन : *डेढ़ दर्जन कहानियां, विभिन्न प्रमुख राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित.*

प्रकाशन : *उपन्यास ''ठौर-ठिकाना'' (२०१०), एक कहानी संकलन एवं उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य.*

संप्रति : *सहायक वित्त सलाहकार, पूर्व मध्य रेलवे, हाजीपुर (बिहार).*

'पारिजात',
१११२/बी-६,
मौर्य विहार (कुम्हरार),
पटना-८०००२६
मो. ९७७१४२५११८

बसंतोत्सवों के रंगीले दिन बीत चुके थे और धरती गरमाने लगी थी. आकाश बेदाग नीला था और प्रकाश झकाझक सफ़ेद. दोपहरी के नीले नभ में चार चीलें यों ही चक्कर काटती हुई ऊपर की ओर चढ़ी जा रही थीं. बुड्ढा सुजान चीलों की इस हरकत को आकाशीय खेत की जुताई समझता था. उसकी मां ने यही बताया था कि चीलें भगवान के हलवाहे होती हैं. बरसात शुरू होने के पहले वे ब्रह्मा के अनंत विस्तार वाले खेतों की जुताई करती हैं. उसके बाद ही धरती के भगवान किसान अपने तपे हुए खेतों की जुताई कर धान की बुआई–रोपाई करते हैं. यह भी मानी हुई बात है कि जिस साल वे ब्रह्मा के आकाशीय खेतों की जुताई नहीं करतीं उस साल भयंकर आकाल की आशंका रहती थी.

बैशाख की जलती दोपहरी में शनिचरा सड़क के पूर्वी किनारे पर मेहंदी की झाड़ियों से घिरी झोपड़ीनुमा दुकान में ग्राहक की प्रतीक्षा करता अकेला सुजान बैठा था. निराशा में डूबा वह कभी सूनी सड़क को देखता तो कभी दिनों-दिन भव्य होते जा रहे शनिचरा मंदिर को. उसे अपने निम्न कुल में जन्म लेने पर कोफ़्त होती तो बिंदा मिसिर की ऊंची जाति से ईर्ष्या. वह विगत पचास से कुछ अधिक वर्षों से वहां बेनागा दूकान लगाता आ रहा था. दरअसल पहले उसकी दूकान वहीं हुआ करती थी जहां आज प्राचीन शनिचरा मंदिर है. कहने को तो प्राचीन मंदिर है लेकिन है सुजान की उम्र से पंद्रह सोलह वर्ष कम ही. आज जहां शनिचरा महाराज बिराजते हैं सुजान कभी वहीं बैठ लोगों के चमरौंधे जूते सिलता रहता था और बरामदे की खुली ज़मीन पर धूप में मरे हुए जानवरों की उतारी हुई खाल पकाता था.

उन दिनों इस इलाके में वर्ष के अधिकतर महिनों में पानी भरा रहता था. सौ क़स्बे वाले इसे जल्ला के नाम से जानते थे. फिर पांच-सात बेघर लोगों ने क़स्बे की गंदगी ढोती नाले के किनारे सरकारी भूमि पर अपनी झोपड़ियां खड़ी कर लीं जिनमें सुजान का बाप धनेसर भी शामिल था. धनेसर की सारी उम्र दो डिसीमिल ज़मीन के टुकड़े की आस में कट गयी और अब सुजान की कट रही थी. उन दिनों रोड का कहीं नामोनिशान तक नहीं था. अलबत्ता एक पगडंडी हुआ करती थीं जो दर्जन भर गांवों को क़स्बे से जोड़ती थी जिस पर वहां के बाशिंदे चलकर बाज़ार-हाट, कोर्ट-कचहरी, दफ़्तर पहुंचते थे. छट्टू तेली किसिम-किसिम के तेलों का कुप्पा लंगड़ी घोड़ी की पीठ पर लादे ख़ूब तड़के तेलियागंज से गांवों की तरफ़ जाता और गोधूली तक रुपयों की गड्डी लंगोट में दाबे वापस होता. सुजान अक्सर उसके चमरौंधे जूते की मरम्मत करता लेकिन छट्टू बिना

चख-चख किये कभी मज़दूरी नहीं देता था. सुजान फ़ुर्सत न होने का बहाना करता तो वह अपने फटे-चीटे जूते, जो मरम्मत के काबिल नहीं रह गये होते थे, वे अगले दिन ले जाने का वादा कर नंगे पैर चला जाता. रात में वे जूते कुत्ते ले भागते और अगली सुबह दोनों के बीच अंतहीन बक-झख होती. बात जूतम-पैजार तक पहुंच जाती थी. लेकिन एक आध सप्ताह बाद सुजान उसके नये जूते चमका रहा होता था.

वक़्त बीतने के साथ पगडंडी डगर और डगर सड़क में परिवर्तित होती गयी लेकिन सुजान के दिन नहीं फिरे. हालांकि वह राहगीरों-यजमानों के जूते बड़ी तन्मयता से चमकाता. उसके हाथों के जादू से बूढ़ी हो चली जूतियां भी पॉलिश पाकर नयी-नवेली हो जाती थीं. वह पॉलिश तैयार करने में माहिर था और यह राज किसी को नहीं बताता था. हालांकि कइयों ने जानने की कोशिश की. कामेसर मोची ने तो उसके इस बेजोड़ हुनर का राज जानने के लिए बिंदा पंडिताइन को तांत की बनी साड़ी तक दे डाली थी जिसे उसने अपने बेटे की शादी में पतोहू को देने के लिए बनारस से ख़रीदी थी. लेकिन उसे हासिल कुछ नहीं हुआ. महिनों पंडिताइन उस साड़ी को पहन कर लोगों के दिल पर राज करती रही. सुजान बिंदा पंडिताइन की जूतियां बड़ी जतन से घंटों चमकाता रहता. बदले में उसकी शहद-सी मीठी बातें और दिल में अंदर तक उतर जाने वाली अतुल्य मुस्कान के सिवा कुछ नहीं मिलता था. सुजान ने पंडिताइन से कभी एक धेला तक नहीं लिया. विधानसभा चुनाव के साल पंडिताइन महिनों ग़ायब रही. अचानक एक दिन अफ़वाह फैली की सती माई की पीठ पर एक गोरी-चिट्टी नवजात को लावारिस छोड़कर वह श्रीमनदास टमटम वाले के साथ कहीं भाग गयी. लोगों का कहना था कि बच्ची खदेरन सिंह ठेकेदार की नाज़ायज औलाद थी. ख़बर ने सुजान को अंदर तक झकझोर कर रख दिया. गम में डूबा वह तकरीबन एक सप्ताह तक दूकान पर नहीं बैठा था और जब बाप ने गरियाया तब जाकर उसके सिर से बिंदा पंडिताइन का भूत उतरा था. नि:संतान कौशल्या दाई ने उस बच्ची का पालन-पोषण किया. वह एक ख़ैराती स्कूल में दायी थी.

दोपहरी के वक़्त सुजान निठल्ला बैठा अतीत में खोया था. अक्सर गुज़रे हुए वक़्त ऐसे ही समय आदमी को बेतरह सताते हैं. यह सब कोई बीस–बाइस साल पहले की बात थी. बिंदा पंडिताइन की सिफ़ारिश पर उसने तीन रुपये चार आने में वह ज़मीन मौखिक रूप से भगतु मिसिर को ख़ुशी-ख़ुशी सौंप दी थी और स्वयं इधर बैठने लगा. उस पैसे से सुजान ने नाले-किनारे की सरकारी ज़मीन पर एक कच्ची झोपड़ी बनवा ली और अपने अशक्त बाप और पत्नी के साथ रहने लगा. भगतु मिसिर ने उसी जगह शनिचरा मंदिर बना लिया. श्रद्धालुओं की कृपा से मंदिर का व्यवसाय चल निकला और वक़्त बीतने के साथ भगतु ऐसे पांच मंदिरों का मालिक बन बैठा. उस रास्ते का नाम भी शनिचरा रोड पड़ गया. मिसिर का एक लड़का ज्योतिषाचार्य था. कंप्यूटर पर लोगों का भाग्य बांचता तथा हज़ारों रुपये लेकर जन्मपत्री बनाने का धंधा करता था. दिनभर दरवाज़े पर दर्जन भर महंगी चमचमाती गाड़ियां लगी रहतीं. चुनावों के दिनों में उसे चाय पीने तक की फ़ुर्सत नहीं रहती. पिछले साल वह एक देशभक्त पार्टी का उम्मीदवार भी था.

आम की डाली से लटकते मधुमक्खी के छत्ते में शहद पक रहा था और ज़मीन पर सुजान का सपना. टप्प! अचानक एक टिकोरा पखेरुओं की प्यास बुझाने के लिए रखे मिट्टी के बर्त्तन के ठंडे जल में गिरा जिससे अतीत में डूबा उसका ध्यान भंग हुआ. वह सहज भाव से पानी से टिकोरा निकाल कर छीलने लगा. इसके सिवा उसके पास इस वक़्त कोई काम तो था ही नहीं.

तभी जलती दोपहरी में हवाई चप्पल चटचटाती रंगीन छाते के सहारे, धूप से लड़ती, उसके पोते की उम्र की एक लड़की पीठ पर कछुए की तरह का बैग लादे हाजिर हुई. वह सुजान को टिकोरा छीलने के काम में व्यस्त देखकर पेड़ के तने के सहारे टिककर खड़ी हो गयी.

''स्कूल बैग छिलना (सिलना) है कितने पैसे लोगे?'' उसने महीन तोतली आवाज़ में पूछा.

पहले देखूं तो सही. उसके हाथ से बैग लेकर उलट-पुलट कर सरसरी तौर पर मुआयना करने लगा.

सुजान के ताम्रवर्णी चेहरे पर काम मिलने की चमक फैली थी.

''इसकी तो पूरी सिलाई उधड़ चुकी है.'' – नया ही क्यों नहीं ले लेती?

''नये क्लास में जाऊंगी तो नया बैग ख़रीदा जायेगा.'' अभी इसी को सिल दो. उसने अपना फैसला सुनाया.

''पांच लगेंगे. इसमें बहुत मेहनत का काम है.'' — पेड़ की जड़ से बैग टिकाकर रखते हुए उसने अपना रेट सुनाया.

''लेकिन मम्मी ने तो तीन ही दिये हैं—इत्ते में नहीं होगा क्या?'' उसने तनिक चिंतित होकर पूछा.

''अब महंगाई बढ़ गयी है तीन में पोसाई नहीं होता,'' मोल भाव की गरज से सुजान ने कहा. लड़की चुपचाप बैग उठाकर निराशा में डूबी जाने लगी.

आधा दिन बीतने को था और अभी तक बोहनी तक नहीं हुई थी. उसकी जेब में एकमात्र अठन्नी बची थी. शाम से दो प्राणियों के सामने फांकाकसी की नौबत दिख रही थी. अब जूते चप्पल कोई नहीं बनवाता. यह सब काम बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों ने हथिया लिये थे. कोई-कोई सिर्फ़ फटे जूते चप्पल और बैग की मरम्मत करवा लेता था.

''सुनो!'' उसने बड़े भारी मन से आवाज़ दी.

''लाओ! मैं बैग सिल देता हूं लेकिन किसी को यह मत बताना कि मैंने सस्ते में तुम्हारा काम कर दिया है.... रेट बिगड़ जायेगा.''

''नहीं बताऊंगी.'' वह पुलकित लौट आयी और बैग थमाकर पेड़ की जड़ पर बैठकर उसका काम करना देखने लगी.

मेंहदी की झाड़ियों से छनकर आती हुई गर्म हवा बालिका की रेशमी जुल्फ़ों से खेलने लगी.

''ये आम के टिकोरे ले लूं?'' थोड़ी देर बाद उसने छिले हुए टिकोरे की ओर इशारा करके पूछा.

एक फांक ले ले—दूसरा मेरे नन्हें स्वामी के लिए छोड़ देना. उसे भी आम के खट्टे टिकोरे बहुत पसंद हैं.''

लड़की ने झट से टिकोरे की फांक उठाकर, कच्चाक से अपने दांतों तले दबा दी. दूसरे ही पल खट्टेपन से उसका संपूर्ण चेहरा निचुड़-सा गया, जिसे देकर सुजान ठठाकर हंसने लगा. वह झेंप गयी.

तभी पुलिस की एक जिप्सी गाड़ी शनिचरा मंदिर के पास पीपल की छाया में हांफती हुई खड़ी हुई. फुर्ती से एक दारोगा उतरा और बड़े-बड़े डग भरता सड़क पार कर सुजान के सम्मुख आ खड़ा हुआ. उसके पीछे-पीछे तोंद, टोपी संभाले, कांख में अपनी उम्र से पुराना बेंत का डंडा दाबे मरियल सा सिपाही भी आ धमका.

''तुम्हारा ही नाम सुजान है?''—उसने कड़क आवाज़ में पूछा.

''जी हुजूर!'' काम बंद कर उसने जवाब दिया और अभिवादन में हाथ जोड़े खड़ा हो गया.

''मंगल चौधरी तुम्हारा बेटा है न?''

हां हूजूर! कोई ग़लती हो गयी का सरकार? वह पुलिसिया आतंक से आंतकित गिड़गिड़ाया. उसका हृदय तेज़-तेज़ धड़कने लगा और चेहरे पर गहरी चिंता छा गयी.

''वो इस वक़्त कहां है?'' कमर पर हाथ धरे दारोगा ने अगला प्रश्न किया.

''वह तो तीन दिन पहले ही बाहर गया है सरकार. उससे कोई ग़लती हो गयी है का मेरे माई बाप?'' हाथ जोड़े उसने उल्टे प्रश्न किया. उसके जुड़े हुए हाथ कांप रहे थे.

''नहीं. लेकिन कल तुम्हें परबतपुर जाना होगा. घर में और कौन-कौन है?''

''एक पांच-छ: साल का पोता है हुजूर— और कोई नहीं.''

''तब तो थोड़ी मुश्किल होगी. दो तीन रोज़ रुकना पड़ सकता है. एक काम करो, उसे भी साथ ले लेना.'' — कुछ देर सोच कर दारोगा बोला.

लेकिन हुजूर मेरे पास तो भाड़े के लिए एक धेला तक नहीं और जाऊंगा कहां? उसने अपनी फटेहाली बयां कर अपनी मजबूरी बतायी.

उसकी चिंता मत करो. सौ–पचास किसी से उधार ले लेना. असमर्थ लोगों के शिनाख़्त का ख़र्च सरकार उठाती है, मैं सिफ़ारिश कर दूंगा. कपड़े लत्ते ले लेना और मंगल का फोटू-ओटू हो तो उसे भी संभाल कर रख लेना.

''कैसी शिनाख़्त करनी है हुजूर?'' अनहोनी की आशंका से उसकी बूढ़ी आंखें गीली हो आयीं और चेहरा पीला पड़ गया. उसे अंदर ही अंदर विचित्र बेचैनी मथे जा रही थी.

''ये तो मुझे भी पता नहीं. वहीं सब कुछ पता चलेगा. वहां के पुलिस अधीक्षक का मैसेज आया है. हो न हो नौकरी–चाकरी का मामला हो? लेकिन तुम पांच बजे तक थाने ज़रूर आ जाना. छ: बजे वहां के लिए एक्सप्रेस

ट्रेन खुलती है. तुम्हारे साथ उधर की रहने वाली एक महिला कांस्टेबल भी जायेगी. चुनाव की वजह से सारे पुरुष कांस्टेबल ड्यूटी पर हैं. तुम्हें कोई परेशानी नहीं होगी. समझ गये न? और जरा मेरे जूते चमका दो. इधर बहुत धूल-धक्कड़ है.''

सुजान जल्दी-जल्दी जूते चमकाने लगा और तीन चार ठेलेवाले पुलिस की खटारा गाड़ी को धक्का देकर स्टार्ट कराने की कोशिश में लगे थे.

दारोगा के चले जाने के बाद वह बड़े बेमन से बैग सिलने के काम में लग गया. लड़की ने चुपचाप तीन रुपये उसकी हथेली पर रखे और बैग उठाकर अपने क़दमों की छाप छोड़ती चली गयी. उसने जाते-जाते एक उदास निगाह सुजान की बेचारग़ी पर डाली. सुजान उसे उसके ओझल होने तक देखता रहा.

दोपहर बाद उसका अस्थिर मन दूकान पर बैठने नहीं दे रहा था. कपड़े–लत्ते धोने थे, ऐसे गंदे कपड़े पहन कर कोई भला परदेस जाता है? उसने बोझिल मन से अपने औजार समेटे और बांस की जाली लगाकर दूकान की हिफ़ाजत का भार शनिचरा महाराज को सौंप अपनी झोपड़ी की ओर चल पड़ा. रास्ते में चरितर साहू की दूकान पर सर्फ का पॉऊच ख़रीदते वक़्त आरती के लिए घी ख़रीदते भगतु मिसिर मिल गये. उसने शिनाख़्त पर जाने का वास्ता देकर सौ रुपये उधारी की मांग अत्यंत दीन भाव से कर दी. थोड़े ना नुकूर के बाद वे इस शर्त पर उधार देने को तैयार हुए कि सौ के सवा सौ लौटाने होंगे. सुजान के सामने जैसी विषम परिस्थिति आ खड़ी हुई थी उसमें वह सौ का पांच सौ के चुकाई पर भी राजी हो जाता. भगतु ने दस-दस के नोट साहू के काउंटर पर रखते हुए उसे उठा लेने का इशारा किया. वे घी का डिब्बा उठाकर मंदिर की ओर चले गये. सुजान को भगतु की काया में भगवान दिखने लगे.

उसकी मनोदशा और फटेहाली भांप कर साहू ने लक्ष्मी गणेश के आगे सिर नवाया और सर्फ के आठ आने नहीं लिये. साहू के रूप में सुजान को एक छोटे-मोटे देवता दिखे. वह अब तनिक ख़ुश था और उसे लग रहा था कि धरती पर छोटे और बड़े ईश्वर एक साथ मौजूद हैं. हालांकि सबने उसे भरसक दुख ही दिये हैं.

रात भर वह स्वामी को बकरी के बच्चे की तरह अपने सीने से लगाये सोने की कोशिश करता रहा. बीच-बीच में झपकी आती भी तो अजीब तरह के डरावने सपने आते. वर्षों बाद पहली बार पत्नी लालपरी सपने में आयी थी. वह दमे की मरीज़ थी. इलाज के अभाव में वर्षों पहले इसी माह के पहले इतवार को अचानक उसका दम निकल गया था और वह कुछ नहीं कर पाया था. सपने में भी लालपरी रोगी अवस्था में ही दिखी. वह चिंतित और उदास थी और अपने बेटे को लेकर कुछ हिदायत दे रही थी. लेकिन सुजान कुछ सुन नहीं पा रहा था. उसे सिर्फ़ उसके हिलते-डुलते होंठ ही नज़र आ रहे थे.

जैसे-तैसे पहाड़ सी वह रात गुज़री. नये चमकीले पत्तों से लदे जामुन के पेड़ पर जब कोयल की कूक सुनायी पड़ी तो उसे भोर का अहसास हुआ. उठकर उसने ढिबरी जलायी और स्वामी को यात्रा की तैयारी की हिदायत देकर फारिग होने पास के परती खेतों की ओर निकल गया. बहुत दिन बाद उसने भोर की हल्की ठंड के बावजूद स्नान किया. भोर का बड़ा-सा तारा निकल आया था.

''इंदिरा आवास के लिए 'नगर निगम' वालों को मेरा नाम पता ठीक-ठाक लिखवा देना लाजो भाभी''- अपने से उम्रदराज पड़ोसिन को उसने याद दिलायी और झोपड़ी की चाबी उस बूढ़ी औरत को सौंपकर शनिचरा रोड जाने वाली पगडंडी पकड़ ली.

शनिचरा मंदिर के सामने वह रुका और श्रद्धा से सिर नवाया. स्वामी ने भी वैसा ही किया. पुजारी ने शनिचरा महाराज की पीतल की बाल्टी से चम्मच भर सरसों का तेल उसकी अंजुली में टपका दिया. उसने झटपट तेल स्वामी के माथे पर थोपा और दोनों हथेलियां अपनी बांह पर रगड़ने लगा. फिर उसने निराशा भरी निगाह अपनी दूकान पर डाली जहां दो मैंनाएं 'टुंग-टुंग' करती फुदक रही थीं. झोपड़ी के दरवाज़े पर एक आवारा कुत्ता चारों खाने चित्त लेटा आराम कर रहा था. उसने दूकान को हाथ जोड़कर अभिवादन किया और आज दूकान पर न बैठने के लिए दूकान-देवता से क्षमा मांगी.

''इत्ती देर कर दी?'' पता है परबतपुर पहुंचना कितना ज़रूरी है. वहां ऊधम मचा है - ऊधम! और तुम हो कि पांव में मेंहदी लगाये अब आ रहे हो! गाड़ी छूट गयी तो कितने सस्पेंड होंगे तुम्हें अहसास है?'' - दादा पोते को कल वाली जीप में लगभग ढकेलते हुए दारोगा हड़काये जा रहा था. पीछे वाली सीट पर तीस-पैंतीस

साल की एक भरी देहवाली महिला कांस्टेबल सस्ते किस्म के एयर-बैग में सामान ठूंसे फुर्ती से बैठी. गाड़ी धुंआ छोड़ती अपने ही गर्द-गुब्बार में ओझल हो गयी.

छुट्टी का दिन होने की वजह से डिब्बा लगभग खाली था. स्वामी पहली बार रेलगाड़ी में सवार हुआ था सो बहुत ख़ुश था और कौतुहल से डिब्बे की आंतरिक साज-सज्जा देखकर अचंभित भी था. वह खिड़की के पास आ बैठा और सीट की रेशमी चिकनाइट पर हाथ फेरने लगा. गाड़ी पहले धीमी और फिर पूरी रफ़्तार से दौड़ने लगी. सुजान उदासी में डूबा पीछे छूटते क़स्बे को देखने लगा. वह सोचे जा रहा था कि आदमी भी एक दिन धरती छोड़कर इसी तरह कभी न लौटने के लिए अनंत यात्रा पर चला जाता है. एक दिन लालपरी भी ऐसे ही यात्रा पर निकल गयी थी. रेलगाड़ी दो-तीन नदी नालों को लांघकर दूर-दूर तक फैले मक्के के हरे-भरे खेतों से होकर गुज़रने लगी.

''घर पर और कौन हैं?- बिस्कुट टूंगती महिला कांस्टेबल ने यों ही पूछा.

''कोई नहीं?'' उसने बस इतना ही कहा और फिर से बाहर पीछे भागते पेड़-पौधों को देखने लगा.

''क्यों?'' इसकी मां नहीं है क्या? उसने मुंह चलाना बंद कर थोड़ा आश्चर्य से पूछा.

''न मां है और न दादी. बाप भी तीन चार दिन पहले दूसरे शहर की तरफ ज़रूरी काम से निकल गया है. उसी की शिनाख़्त में तो हमें ले जा रही हैं - शायद नौकरी-चाकरी का मामला है. आजकल बिना परिचय पहचान के तो कोई जूठी प्लेट धोने की नौकरी भी नहीं देता—कैसा ज़माना आ गया है, कोई अपने बाप पर भी भरोसा नहीं करता.

''स्वामी अपने बाप को बहुत चाहता है - जबसे वह गया है इसकी तो नींद ही उड़ गयी है. दिनभर आवारागर्दी करता रहता है. करे भी तो क्या?''

''इसकी मां को क्या हुआ?'' उसने आहिस्ते से पूछा.

''होना क्या था? नाम था लतिका. पहाड़ी ब्राह्मणियों की तरह गोरी और ख़ूबसूरत. कौशल्या दाई को सतीमाई के स्थान पर लावारिस मिली थी. बड़ी होने पर हम दोनों ने राजी–ख़ुशी मंगल से उसकी शादी कर दी. स्वामी के जनम के चार-पांच महिना बाद ही आस-पास के कॉलोनी के लुच्चों के हाथ उसकी इज़्ज़त आबरू लुटते-लुटते बची थी. मरता क्या न करता, हमें सुगना के साथ उसे परबतपुर नौकरी के लिए भेजना पड़ा, ताकि कम से कम इज़्ज़त बची रहे. मंगल बड़ी मुश्किल से राजी हुआ था. सुगना एक राजस्थानी महाजन के यहां नौकर था और उसी के यहां घरेलू नौकरानी का काम दिलवाने के लिए लतिका को ले गया था. तब से न कभी सुगना लौटा और न ही लतिका. हम तो अब उसकी वापसी की आशा छोड़ चुके हैं. मंगल इन दिनों बहुत परेशान रहने लगा था लेकिन हम कर ही क्या सकते थे. हमारा तो भाग्य ही खोटा था.'' वह चुप हो गया और आंसू रोकने की कोशिश में लगा रहा.

''साहेब के कहने पर इसे भी साथ ले लिया हूं और छोड़ता भी तो किसके भरोसे? आजकल छोटे बच्चों का बहुत अपहरण होने लगा है.''

''ठीक ही किया, देश-परदेस भी घूम लेगा और दुनियादारी भी समझने लगेगा.''—कांस्टेबल स्वामी के गाल सहलाती बोली.

स्वामी झपकी लेने लगा था और रह रहकर वह खिड़की से टकरा जा रहा था.

सूरज आसमान में दो तीन पुरसा चढ़ आया. आसमान से आग के अंगारे बरसने लगे थे.

स्वामी पहली मर्तबा रेलगाड़ी की सवारी कर रहा था. सुजान भी इसके पहले एक बार भगतु मिसिर के बहकावे में आकर मंदिर-मंदिर के खेल में शामिल होने मंदिरों के एक शहर में गया था. वहां ऐसी भगदड़ मची थी कि उसका राम नाम सत्य होते-होते बचा था. उस भीड़ में मिसिर महाराज पता नहीं किधर बिछुड़ गये और उसे लौटने में बड़ी फजीहत हुई थी.

''कुछ खाने को नहीं लाये क्या.'' उसने स्वामी की तरफ़ एक बिस्कुट बढ़ाते हुए पूछा और बोतल का पानी गटकने लगी.

''नहीं. घर में कुछ था ही नहीं तो क्या लाता?'' उसने बड़ी दीनता से बताया.

सुजान जरा आगे झुककर कांस्टेबल की छाती पर लगी नेम प्लेट पढ़ने लगा—ता.... ता... ताराबाई.

उसका इस तरह घूरना कांस्टेबल को असहज कर गया लेकिन उसे बूढ़े की नियत में खोट नज़र नहीं आयी.

स्वामी की उम्र तकरीबन छः-सात साल की रही होगी. उसके बाल घुंघराले थे और अधिक तेल की वजह से चमक रहे थे. रंग गेहुंआ, कांस्टेबल से जरा बीस, आंखें झील सी नीली और मासूमियत से भरी हुई. वह फुटपाथी जीन्स और सस्ते किस्म का टी-शर्ट पहने था जिस पर होली के रंगों के छीटें अभी सलामत थे. पैर में कैनवस के जूते. दोनों जूतों में भिन्न रंग के फीते बंधे थे. उसे अपनी ग़रीबी पर कोई अफसोस नहीं हो रहा था और मजे से अपना पहला सफर तय कर रहा था.

लोहे का एक लंबा पुल पार कर थोड़ी देर बाद गाड़ी एक छोटे जंक्शन पर ठहर गयी. गाड़ी के रुकते ही दर्जन भर फेरी वाले सामानों का खोंमचा लिये डिब्बों के सामने चिल्लाने लगे. दोपहर हो आयी थी सो स्वामी और सुजान को भूख लगना स्वाभाविक था. हालांकि सुजान पैसे खर्च करना नहीं चाहता था. शायद उसे उम्मीद थी कि जिस काम के लिए उसे ले जाया जा रहा है, वहां भाड़े की तरह खाने की भी मुफ़्त व्यवस्था होगी. पर पता नहीं परबतपुर कितनी दूर है—कहीं पहुंचते-पहुंचते जान ही न निकल जाये. स्वामी ठुनकते हुए पूरी-सब्ज़ी की ज़िद करने लगा. थक हार कर उसने पांच रुपये की पूरी ख़रीदी और खिड़की से दोना थमाने लगा. पहले उसने दोना कांस्टेबल की तरफ़ बढ़ाया लेकिन ताराबाई ने सहृदयतापूर्वक अस्वीकार कर दिया और अपना भोजन बैग से निकालने लगी. खाना जल्दी जल्दी ख़त्म कर सुजान पानी पीने के लिए प्लेटफॉर्म पर उतर गया.

कांस्टेबल डर रही थी कि सुजान के गाड़ी में सवार होने से पहले ही गाड़ी खुल न जाये. डर के मारे वह खाना बंद कर खिड़की से झांककर बुड्ढे को देखने लगी. कांस्टेबल को इस बात का भी डर सताने लगा कि कहीं बूढ़ा इसी बहाने फरार न हो जाये और अगर ऐसा होता है तो उसके परिणाम की कल्पना कर कंठ सूखने लगा. गटागट दो–तीन घूंट पानी पीकर वह अपनी ड्यूटी निभाने गेट की तरफ़ भागी. शुक्रिया भगवान! पानी भरी बोतल थामे सुजान को आता देख उसकी जान में जान आयी.

''तुम गाड़ी से उतरा न करो—ज़रूरत हो तो मुझे बोल दिया करो. मैं पानी वगैरह ला दूंगी. कहीं प्लेटफॉर्म पर ही छूट जाते तो आज मेरी नौकरी गयी समझो.'' चेतावनी भरे लहजे में उसने हिदायत दी और फिर से अपना खाना खाने लगी.

गाड़ी में भीड़ बढ़ गयी थी. ताराबाई ने स्वामी को अपनी बग़ल में, खिड़की के पास बैठा लिया. सब्ज़ी के तीतेपन से वह परेशान था और लगातार सी-सी किये जा रहा था.

तपती दोपहरी में रेलगाड़ी गेहूं के अनंत से दिखने वाले परती खेतों से होकर गुज़र रही थी. गाड़ी सिग्नल की प्रतीक्षा में एक अर्द्धनिर्मित मंदिर के पास खड़ी हो गयी. मंदिर के पास चबूतरे से घिरा एक पाकड़ का विशाल वृक्ष था जिसकी छाया मंदिर पर पसरी थी. पेड़ की छाया में एक सजी-धजी कार खड़ी थी. गांव के सिवान पर संभवतः बारात की विदाई में महिलाएं कोई रस्मी गीत गाती हुई विवाहोत्सव में मगन थीं. लाइन के किनारे के गढ़े सूखे हुए थे और उनमें अकाल के दिनों की तरह की बड़ी-बड़ी दरारें उभर आयी थीं. स्वामी तृप्त भाव से ताराबाई की गोद में लुढ़का सो रहा था. ताराबाई भी उसे अपनी औलाद की तरह स्नेह से संभाले सो रही थी. उसके अंदर से सिपाही की कठोरता ग़ायब थी और इस वक़्त वह सिर्फ़ एक सामान्य सी स्त्री थी. बैंड बाजे की आवाज़ सुनकर पहले स्वामी के शरीर में हरकत हुई और फिर ताराबाई थोड़ी कुलबुलायी—लेकिन तब तक गाड़ी चलने लगी और दोनों ने पूर्ववत सोने की कोशिश में आंखें मूंद लीं. सुजान ऊपर की बर्थ पर जाकर सोने की कोशिश करने लगा. उसके सिर के नीचे झोले में काग़ज़ के तीन-चार पुराने-उराने पन्ने दबे हुए से साथ-साथ यात्रा कर रहे थे.

दो बजे के करीब गाड़ी गंतव्य पर पहुंची. कांस्टेबल ताराबाई अपने को संयत भी नहीं कर पायी थी कि आठ-दस कमांडो डिब्बे में दनदनाते प्रविष्ट हुए और पलक झपकते उन तीनों को लिये दिये स्टेशन से बाहर निकल गये. ताराबाई हतप्रभ थी. उसे शिनाख़्त के मामले की गंभीरता का अंदाजा अब जाकर हुआ. उसे अफसोस हो गया था कि उसे न तो बालों में कंघी फेरने का मौक़ा मिला और न ड्रेस को ठीक करने का. पुलिस की वैन में फोर्स के सदस्य पाटन पुलिस के अधिकारियों की सुजान के साथ महिला कांस्टेबल को भेजने के लिए खिल्ली उड़ाते रहे.

''बूढ़े को तीर्थ यात्रा करानी थी क्या, जो महिला पुलिस के साथ भेज दिया.''- और वे ठठाकर हंस पड़े.

ताराबाई बुरी तरह झेंप गयी और उसे लगा कि वह इस बार भी अपनी मां से मिलने परबतपुर के पासवाले अपने गांव नहीं जा पायेगी. क़स्बे की दुकानें बंद थीं. पोस्ट ऑफिस, सिनेमा हॉल और इक्की-दुक्की दुकानें खुली धूप की आंच ताप रही थीं. गिने-चुने लोग ही सिर पर सफ़ेद टोपी या गमझा लपेटे इधर-उधर आ जा रहे थे. गर्मी के मारे उनके चेहरे लटके थे.

थाने में बड़े ओहदे वाले पुलिस अधिकारियों की लाल-पीली बत्तियां लगी दर्जन भर गाड़ियां खड़ी मामले की नजाकत बयां कर रही थीं. पुलिस वैन भीड़ से गुज़र कर थाने में दाख़िल हुई तो सब तरफ हबड़-दबड़ मच गयी. गेट फुर्ती से बंद कर दिया गया और बीस पच्चीस 'एनहान्स' रायफ़लधारी जवानों ने मोर्चा संभाल लिया. बाहर भीड़ हवा में हाथ लहरा-लहरा कर पुलिस प्रशासन के विरुद्ध नारे लगा रही थी. सुजान और स्वामी के कंठ प्यास के मारे सूख रहे थे और वे थूक निगलकर गला तर करने की कोशिश करते लोगों को हक्का-बक्का सा देखते रहे.

बड़े साहब का बुलावा आने पर कांस्टेबल ताराबाई कमरे में चली गयी. भीतर से खुसुर-फुसर आवाज़ आती रही. कुछ देर बाद सुजान की बुलाहट हुई. कोई दसेक फ़ॉर्मों पर उसके अंगूठे के निशान लिये गये.

ताराबाई कमरे के बाहर बरामदे में खड़ी थी. उसने अपने बैग से बिस्कुट का अंतिम टुकड़ा निकाल कर स्वामी की ओर बढ़ा दिया और उसे बेंच पर सलीके से बैठने का इशारा किया. वह डगर-डगर करती बेंच पर घुड़सवारों की तरह बैठा था. ताराबाई को आश्चर्य हो रहा था कि विपत्ति के उस समय स्वामी तनिक भी विचलित नहीं था. उसका हृदय स्वामी की मासूमियत पर दयार्द्र हो उठा. कुछ मिनट बाद कमरे में मात्र तीन चार लोग रह गये और सुजान लोहे की एक बेढब कुर्सी पर बैठा बारी-बारी से उनके तनाव भरे चेहरों को देख रहा था. वह ख़ुद भी भय और भूख से आतंकित था.

''क्या नाम है बाबा?'' पानी का गिलास अपने हाथ से पेश करते पुलिस अधीक्षक ने पूछा.

''सुजान चौधरी, वल्द हरखू चौधरी, क़स्बा पाटन.'' वह किताब बाचने के अंदाज में बोला और गटागट पानी पी गया.

ग़ज़लें

✍ डॉ. राजीव श्रीवास्तव

हर इक क़दम पे यारो, संभलकर चलना,
रुख़ हवाओं का भी तो, समझकर चलना.

वही अच्छा है मुसाफ़िर इस ज़माने में,
जिसको आता है यारो, वक़्त से मिलकर चलना.

हमेशा पाओगे कामयाबी, नागफनियों से,
कभी उलझकर, तो कभी सुलझकर चलना.

वो ही अच्छा है खिलाड़ी, यारो चौपड़ का,
जिसको आता है, पाशे बदलकर चलना.

ग़र न 'राजीव' चल सको तो कोई बात नहीं,
बहुत गुनाह है यारो, उछलकर चलना.

× × ×

हमने वो मंजर देखा है,
यौवन लहरों पर देखा है.

अपना कत्ल स्वयं करने को,
हाथों में खंजर देखा है.

आज शाख के हर इक गुल का,
अश्क से दामन तर देखा है.

ख़ुद्दारी का साथ मिला तो,
कांटों का बिस्तर देखा है.

याद की नागिन के डसने का,
हमने बहुत असर देखा है.

थके पंक्षियों के स्वागत में,
झुकता एक शज़र देखा है.

परसी थाली का हट जाना
हमने ये अक्सर देखा है.

✆ २४९, गुद्दड़बाग,
अध्यापक गली, बरेली (उ. प्र.)

''मंगल तुम्हारा बेटा था?''

''हां हुजूर, था क्या मेरा ही है. उसी की नौकरी के सिलसिले में तो आप लोगों ने बुलाया है सरकार. देखिए

उसका फ़ोटो भी है मेरे पास.'' वह जल्दी-जल्दी थैले से फ़ोटो निकालने लगा. उसे अपने बेटे से मिलने की बेताबी थी.

''मुझे अफ़सोस है बाबा कि वह अब नहीं रहा.'' — मंगल की मुड़ी-तुड़ी तस्वीर टेबल पर पेपर वेट से दबाते हुए अधीक्षक बोले.

''परसों ही की बात है—उसे मुहल्ले के महाजन नेतराम सिंह की बीबी से दिन दहाड़े जोर-जबर्दस्ती करते लोगों ने पकड़ लिया था. हालांकि नेतराम की दयालु पत्नी ने भीड़ से उसे माफ़ करने की गुहार लगायी थी. लेकिन भीड़ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे उसे मरने तक मारते रहे. तुम्हें अब उसकी शिनाख़्त करनी है.'' और अधीक्षक एक झटके से कुर्सी से उठे और थाने के पिछले भाग में बने एक अंधेरे बदबूदार कमरे की ओर चल पड़े. पीछे-पीछे छः सात सिपाही सुजान को लगभग ढकेलते हुए ले चले.

थोड़ी देर बाद हठात ब्रह्मांड को कंपा देने वाली दहाड़ से थाना परिसर गूंज उठा. गोधूलि में आकाश पीला हो चुका था. भारी पुलिस बंदोबस्त के बीच मंगल का शव अंत्यपरीक्षण के लिए जा चुका था. स्वामी अपने पिता का अंतिम दर्शन कर रोते-रोते हिचकियां लेता ताराबाई की गोद में सो चुका था.

''हुजूर, मेरे मंगल ने किसी का क्या बिगाड़ा था जो इतनी बड़ी सज़ा उसे मिली.''— हाथ जोड़े वह फिर से पुलिस अधीक्षक के सामने खड़ा था.

''अरे वह पापी था पापी. इस शहर में कोई किसी पराई औरत पर बुरी नज़र नहीं डालता. शरीफ़ों का शहर है, जाहिलों का नहीं. मुहल्ले वाले इस कदर ख़फा हैं कि उसके पापग्रस्त शरीर को इस शहर के श्मशान पर जलाने तक नहीं देना चाहते. बाहर देख रहे हो न? कितनी भीड़ इकट्ठी है. कभी भी बेकाबू हो सकती है. तुम्हारे और इस बच्चे की जान को ख़तरा है. तुमने उसे नेक दिल इंसान क्यों नहीं बनाया. अब अफ़सोस के सिवा तुम कर भी क्या सकते हो?'' थानेदार बोले जा रहा था और उसके चेहरे पर मंगल के लिए घृणा और अनादर के भाव बन बिगड़ रहे थे.

''लेकिन सरकार! मैं उसका बाप हूं. आज तक उसने किसी जवान औरत तो क्या किसी भी औरत की तरफ़ आंख उठा कर नहीं देखा. उसकी ख़ुद की एक सुंदर बीबी थी तो क्या ज़रूरत थी ऐसा करने की. मुझे विश्वास नहीं हो रहा.''

''हर चोर बदमाश अपने को शरीफ़ ही बताता है. अरे वह इतना लुच्चा था कि नेतराम और उसके खानदान को भद्दी-भद्दी गालियां दे रहा था. बात यहां तक रहती तो शायद यह नौबत नहीं आती. लेकिन जब उसने मुहल्लेवालों को भी गला फाड़-फाड़ कर गरियाना शुरू कर दिया तो बात एकदम से बिगड़ गयी. शर्म के मारे वह बोल भी नहीं पा रहा था.''

सुजान के जुड़े हाथ बुरी तरह कांप रहे थे और वह लगातार रोये जा रहा था. उसके मुंह से बोल नहीं फूट रहे थे. मन की अकुलाहट से आंखें फैली जा रही थीं.

''जानते हो, पब्लिक इतनी क्रोधित थी कि पुलिस पर पथराव करने लगी. देखो मुझे भी दो टांके लगे हैं, दो कांस्टेबल अस्पताल में अपनी टूटी टांग पर प्लास्तर चढ़ाये पड़े हैं.''

ग़ुस्से से लगभग कांपते हुए दारोगा ने अपनी भड़ास निकाली और पानी पीने लगा.

''लेकिन इस बेचारे बूढ़े का इसमें क्या दोष है?'' आपको एक बुजुर्ग व्यक्ति से, जिसका जवान बेटा मारा गया है, इस तरह पेश नहीं आना चाहिए. कम से कम अंत्येष्टि तक इसके दुखों को बढ़ाने की बजाय कम करने की कोशिश करनी चाहिए.'' एक पत्रकार बीच में हस्तक्षेप कर रहा था.

''ऐसे तो शोहदे–मवालियों की हिम्मत बढ़ जायेगी और कल को आप ही लोग पुलिस के विरुद्ध आग उगलेंगे. हमें ऊपर वालों को जवाब देना पड़ता है. पता है उस इलाके का सब-इंस्पेक्टर सस्पेंड हो चुका है? वो बेचारा तो मुफ़्त में मारा गया न?'' पैंतरे बदलते हुए उसने पत्रकारों को निरुत्तर कर दिया.

सुजान चुपचाप रोये जा रहा था. उसे सूझ नहीं रहा था कि वह करे तो क्या करे.

''देखो बाबा, तुम्हारे बेटे की मौत से हम भी आहत हैं, लेकिन वह दोषी तो था ही न? नेतराम और पब्लिक को गालियां नहीं देता तो शायद बात यहां तक नहीं बिगड़ती. नेतराम सिंह एक इज़्ज़तदार आदमी है. वह उस मुहल्ले का वार्ड कांउसलर भी है.'' उसके कंधे पर हाथ धरे पुलिस अधीक्षक बोले.

''लेकिन सरकार, वह किसी को गाली कैसे दे सकता है? वह तो जन्मजात गूंगा था. और वह नौकरी के

लिए नहीं अपनी बीबी की तलाश में परबतपुर आया था. उसकी बीबी इसी शहर में वर्षों पहले आयी थी लेकिन आज तक लौटी नहीं. देखिए मेरे बेटे और बहू की शादी की तस्वीर मेरे पास है. डॉक्टर का प्रमाण-पत्र भी लाया हूं. मैं तो समझ रहा था कि यहां नौकरी के सिलसिले में उसकी गारंटी लेने के लिए बुलाया है.''—और उसने फ़ोटो तथा काग़ज़ात अधीक्षक के सामने टेबुल पर फैला दिये.

पुलिस अधीक्षक की आंखें फटी की फटी रह गयीं. मंगल के साथ जिस औरत की तस्वीर थी वह तो नेतराम की बीबी सावित्री थी. यानि लतिका ही सावित्री बन बैठी. और सिविल सर्जन द्वारा जारी प्रमाणपत्र के अनुसार मंगल गूंगा-बहरा था.

''सब साले मारे गये. लगता है इन थानेदारों की करतूत से आई. जी. तक पर गाज गिरनी तय है. इन सालों ने पूरी रिपोर्ट ही ग़लत बना डाली और मेरा हस्ताक्षर लेकर मुझे भी फंसा दिया. ये इज़्ज़तदार लोग अपने ख़ानदान में भ्रूण हत्या और ऑनर किलिंग करेंगे पर ऐश-मौज तथा वंश चलाने के लिए कमज़ोरों की बहु-बेटियां ख़रीद लायेंगे बेशर्म कहीं के!''-पुलिस अधीक्षक पसीना पोंछते हुए बुदबुदाये. पत्रकार, फ़ोटो और प्रमाणपत्र की तस्वीर उतार कर जाने लगे. मामला यू-टर्न ले चुका था और बाहर भीड़ नारे लगाती अड़ियल टट्टू की तरह जमी थी. थाने में फिर से ख़ामोशी छा गयी. पुलिसकर्मियों के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं. मामला दो राज्यों के बीच का बनता नज़र आ रहा था यानि एक राज्य केंद्रीय सरकार की पार्टी का था तो दूसरा विपक्षी पार्टी द्वारा शासित.

वायरलेस पर केंद्रीय सुरक्षा बल की अतिरिक्त टुकड़ी को अविलंब परबतपुर की ओर रवानगी का अनुरोध कर पुलिस अधीक्षक हड़बड़ाये हुए से उन तीनों को पिछले गेट से मुख्यालय ले उड़े. जैसे-तैसे रात गुज़री और भारी पुलिस बंदोबस्त के बीच मंगल पंचतत्व में मिल गया.

''साहेब! अब अपने गांव-घर जाने का इंतजाम कर देते तो बड़ी कृपा होती. न हो तो मैं भीख मांग कर टिकट कटा चला जाऊंगा.''

''तुम्हारी जान को पब्लिक से ख़तरा है, तुम समझ

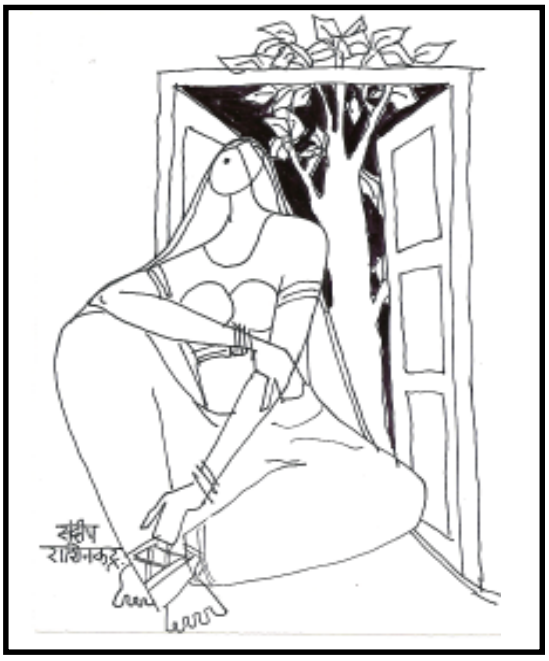

क्यों नहीं रहे? मैं भी चाहता हूं कि तुम जितनी जल्दी हो सके इस शहर से निकल जाओ. बस एक शिनाख़्त और करनी है—अभी वे आते ही होंगे. चाय पियोगे?'' ख़ुद चाय पीते हुए अधीक्षक ने कहा. अधीक्षक रात भर जागता रहा था सो चेहरा उखड़ा-उखड़ा लग रहा था.

''अब तो मेरा कोई नहीं है सरकार, अब किसकी शिनाख़्त करनी है?'' वह फिर से रोने लगा. स्वामी ताराबाई की बगल में फ़र्श पर बैठे शेर की शक्लवाले रौबीले भेदिया सरकारी कुत्ते को देख रहा था जो रह-रह कर ऊपर की ओर मुंह बाये गर्म हवा को सूंघ ले रहा था.

थोड़ी देर बाद पुलिस अधीक्षक के कमरे में जो सजी-धजी औरत आकर खड़ी हुई. उसे सुजान अपनी फटी आंखों से देखता रह गया. वह गहरी सोच में डूब गया. स्वामी उसकी बग़ल में दूसरी कुर्सी पर बैठा उस औरत को निर्विकार भाव से देखते हुए चुपचाप पैर हिलाता रहा. बीच-बीच में वह कुल्हड़ उठाकर चाय पी ले रहा था.

''इन्हें पहचानते हो?'' अधीक्षक ने पूछा.

सुजान की तंद्रा भंग हुई. उसने अपनी गीली आंखें धीमे-धीमे पोंछी और धीमे से कहा—''नहीं? यह मेरी पतोहू लतिका नहीं है, उसी की जैसी कोई शरीफ़ औरत है. उसकी लतिका इतनी सुंदर नहीं थी और न उसके शरीर पर इतने

सारे जेवरात थे.''

नेतराम सिंह की बीबी की बग़ल में स्वामी की हू-ब-हू शक्लवाली एक चार-पांच वर्ष की लड़की आकर्षक पोशाक में खड़ी स्वामी को घूर रही थी. स्वामी उसे देखकर मुस्कुरा रहा था और जवाब में वह भी. फिर लड़की ने जीभ दिखायी लेकिन स्वामी ने कोई उत्तर नहीं दिया और पुलिस अधीक्षक को देखने लगा.

सुजान के सामने सावित्री के हाथ स्वत: जुड़ गये. उसने आगे बढ़कर स्वामी के माथे पर हाथ फेरा और चूम कर फफकती कमरे से बाहर निकल गयी. पीछे-पीछे वह लड़की भी आहिस्ते से साथ हो ली. स्वामी उसे जाता देखता रहा. जीवन में पहली बार किसी औरत ने उसका चुंबन लिया था सो वह हतप्रभ था और बड़ी देर तक स्नेह में डूबे हुए उस अंतिम उपहार को अपने गाल पर अनुभव करता रहा. पुलिस अधीक्षक चुपचाप यह सब देखते रहे और एक लंबी सांस खींचकर उन्होंने कुछ फ़ॉर्मों को अंगूठे के निशान के लिए सुजान के सम्मुख बढ़ा दिया. सुजान कल से निशान लगाते–लगाते बुरी तरह काले हो आये अगूंठे को फिर से 'इंक पैड' पर रगड़ने लगा. एक-दो जगह ताराबाई और स्वामी के भी निशान लिये गये.

''अब तो चलूं हुजूर! अगर आज की गाड़ी छूट गयी तो बड़ी मुश्किल हो जायेगी. अपने बेटे की आत्मा की शांति के लिए सारे कर्मकांड मुझे ही करने हैं.'' उसने कुर्सी से उठते हुए कहा और पसीने से भींगी अपनी कमीज़ को गोद से उठाकर चलने को हुआ.

''आज रुकते तो कबीर अंत्येष्टि योजना के पैसे मिल जाते, खैर आपके पते पर पहुंच जायेंगे.'' पुलिस अधीक्षक महोदय अपनी जेब से सौ का एक नोट निकाल कर बढ़ाते हुए बोले, ''तब तक इसे रख लीजिए, काम आयेगा.''

''सरकारी पैसे अब मेरे किसी काम के नहीं हुजूर. मैं ग़रीब ज़रूर हूं लेकिन इतना गिरा नहीं हूं कि अपने बेटे की मौत के बदले पैसे लूं. मेरा मंगल तो रावण था रावण—उस पापी को सजा देने वाले रामों के बीच ये पैसे बांट दीजिएगा सरकार, ताकि ऐसे रावणों से यह धरती मुक्त रहे.''

वह रोते-कलपते एक बार फिर से पुलिस जीप में बैठ गया. स्वामी को थामे ताराबाई कांस्टेबल भी उसकी बग़ल में बैठ गयी. आज तक ऐसी स्थितियों से उसका सामना नहीं हुआ था. सुजान निश्चय कर चुका था कि बेटे के कर्मकांड के लिए अपनी दुकान भगतु मिसिर को बेच देगा. मिसिर एक और मंदिर का मालिक हो जायेगा. एक और छोटा ईश्वर लोगों के दुख-दर्द दूर करने के लिए मंदिर में बैठने लगेगा. शहर की आबादी बढ़ने के साथ देवताओं की संख्या बढ़नी चाहिए. निवासियों के कष्ट भी तो बढ़ते ही जाते हैं न. गाड़ी स्टेशन छोड़ चुकी थी.

''अब मेरे स्वामी की देखभाल करने वाला कोई नहीं रहेगा तारा मैडम! मेरी भी तो अब धरती से रुख़्सत का समय हो चला है. न जाने इस मासूम की पहाड़ सी ज़िंदगी कैसे कटेगी?'' डिब्बे की चुप्पी तोड़ता सुजान बोला और माथे का पसीना हथेली से पोंछने लगा.

''तुम चिंता न करो बाबा! मेरी कोई औलाद नहीं है. मैं इसे अपने पास रखूंगी. अब मैं ही इसकी मां हूं. मुझसे अब और पुलिस की नौकरी नहीं होगी. कल ही 'वालंटरी रिटायरमेंट' की दरख़्वास्त दे दूंगी.'' अपनी गोद में सोये स्वामी को चूमती भावुक होकर ताराबाई बोली और कहीं शून्य में खो गयी.

गाड़ी पाटन की ओर भागी जा रही थी. आधी रात हो चली थी. डिब्बे में यात्री सो रहे थे. दो-तीन यात्री अगले स्टेशन पर उतरने के लिए सामान सहेजने में लगे थे. सुजान अंधेरे में डूबी मायावी दुनिया में खोया था. स्याह आसमान में चमकते सितारों को वह बड़े गौर से देख रहा था. इस वक़्त वही उसके साथ-साथ चल रहे थे. कुछ देर बाद उसे लगा कि तारों के बीच से लालपरी और मंगल उसे बुला रहे हैं. वह खिड़की से आकाश की तरफ़ हाथ फैलाये हठात् जोर-जोर से चीख़ने लगा.

उसकी चीख़ इतनी विचित्र थी कि डिब्बे के सोये यात्री हड़बड़ा कर जग गये और उसकी तरफ़ दौड़े. कुछ देर बाद हकीकत समझ कर सभी बुदबुदाते हुए अपनी-अपनी बर्थ की ओर लौट गये.

''लगता है बुड्ढा पागल हो गया.'' साइडवाली बर्थ का सेठनुमा यात्री नींद में खलल पड़ने से बौखलाया बोल पड़ा.

.... और अगले शनिवार को ताराबाई रोते स्वामी के माथे पर स्नेह से हाथ फेरती नम आखों से सुजान चौधरी को सरकारी एम्बुलेंस में लदकर पागल खाना जाते देख रही थी. वापसी की रात से ही सुजान अपने पोते की शिनाख़्त भूल चुका था.

❖❖❖

तेलुगु कहानी

फ़सल

✍ वल्लूरु शिवप्रसाद

कांतय्या के हाथ-पैर फूल गये थे. एक अप्रत्याशित आफ़त उसके सामने आ खड़ी हुई थी. ऐसी विषम परिस्थिति थी कि जो फल हाथ में आया वह मुंह तक नहीं पहुंच पा रहा था. दो एकड़ की फ़सल पानी में डूब जाती तो ज़िंदगी बरबाद होनेवाली थी. कल तक जो तेज़ और चिलचिलाती धूप हुआ करती थी वह अब उमस से भरी तन-बदन को पसीने से तर-ब-तर कर रही थी.

पता नहीं यह कैसा दुर्भाग्य था. सुबह होते-होते सारा आकाश बादलों से भरकर धुंधलापन छा गया था. बंगाल की खाड़ी पर वायुमंडल में अल्प दबाव उत्पन्न हुआ, यह ख़बर पाकर किसानों के मन आशंका से भर उठे. गांव में तब तक किसानों के जिन चेहरों पर हंसी-ख़ुशी से भरी मुस्कान थी, वे आसन्न ख़तरे को देखते हुए म्लान हो उठे.

अगले दिन शाम तक उस अल्प दबाव ने चक्रवात का रूप ग्रहण कर लिया था. फिर तो किसानों के गले से निवाला नीचे नहीं उतर रहा था.

गांव में पिछले दस दिन फ़सल की कटाई जोरों से चल रही थी. जो किसान पहले ही कटाई कर चुके थे, उनकी फ़सल का ढेर बनना भी शुरू हो गया था. मजदूरों की कमी साफ़ दिख रही थी. सिंचाई की सुविधा से रहित इलाकों से पेट की ख़ातिर रोज़ी-रोटी के लिए आये हुए प्रवासी मज़दूरों से बड़े किसानों के मवेशीख़ाने भर गये थे. बड़े किसानों की ज़रूरतें पूरी होने के बाद ही मज़दूर छोटे किसानों के खेतों में काम कर सकते थे.

तब तक उन किसानों ने राहत की सांस ली जो अपनी कटी फ़सल के ढेर बनवा चुके थे. जो छोटे किसान कटाई पूरी करके गट्ठे सुखा रहे थे उनके लिए बड़ी समस्या आ पड़ी थी. संकर बीजों के आने के बाद कटे पौधे एक हफ़्ते तक कच्चे ही रहते थे और गट्ठे ठीक से नहीं सूख रहे थे. अनाज के पौधे वर्षा के पानी से भीग जायेंगे तो लगातार इतने दिनों से की हुई मेहनत बेकार होनेवाली थी. अगर ऐसा हुआ तो दाने झर जायेंगे और उनसे अंकुर निकल आयेंगे. इसका मतलब यह होगा कि किसान पूरी तरह बरबाद हो जायेगा. इसलिए बारिश होने से पहले ही कटी फ़सल के ढेर बनाना आवश्यक था.

जिनकी फ़सल के कटे पौधे सूख चुके हों, उनके ढेर बनाने से नुक़सान नहीं होता. लेकिन गट्ठों के अच्छी तरह सूखे बिना उनके ढेर बनाने से धान ख़राब हो जाता है. दाना टूट जाता है और उसका भाव गिर जाता है. फिर भी पूरी तरह हानि उठाने के बजाय थोड़े से नुक़सान के साथ इस स्थिति से उबरना संभव था. यही सोचकर सारे के सारे किसान मज़दूरों के लिए गांव में तलाश करने लगे. सुबह होने तक उन्हें मज़दूरों का बंदोबस्त करना था.

कांतय्या अपने घर में था और असमंजस की स्थिति में परेशान था. बाहर के

వల్లూరు శివప్రసాద్

जन्म : १९५५

लेखन : *लगभग ७० कहानियों की रचना. 'कथाबिंब' में इसके पहले कहानी 'कीड़े' प्रकाशित. प्रस्तुत कहानी मूलतः तेलुगु मासिक 'स्वाति' के दिसंबर २०१० अंक में प्रकाशित हुई थी. 'मधुमती', 'नई दुनिया', 'अक्षरा', 'वीणा', इंद्रप्रस्थ भारती', 'नवनीत', 'कथा', 'संचेतना', 'अनहद', 'हिमालिनी' (नेपाल) आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी अनुदित कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं. अब तक इनके तीन कहानी-संग्रह 'ताजमहल', 'कुरिसिन मब्बु' (बादल बरसा हुआ) और 'मुंदे मेलुको' (समय रहते जागो) प्रकाशित. इसमें से 'ताजमहल', 'मैसूर विश्वविद्यालय के तेलुगु पाठ्यक्रम में सम्मिलित. इसके अलावा उपन्यास, एकांकी, नाटक और बाल कहानियां भी प्रकाशित. कुछ नाटक एवं कुछ कहानियों का नाट्य रुपांतर*

वातावरण के साथ ही उसके घर की हालत भी ठीक नहीं थी. उसकी पत्नी तुलसी दो दिन से बीमार थी. वह दमे की मरीज़ थी.

गांव में आरएमपी डॉक्टर रामय्या अपनी क्षमता के अनुसार इलाज कर रहा था. पर जाने क्यों, बीमारी तो दिन-ब-दिन बढ़ रही थी.

''क्यों रामय्या! इंजेक्शन तो दे रहे हो, पर तकलीफ़ कम नहीं हो रही है.''- अविश्वास के साथ कांतय्या ने पूछा.

''यही मैं भी नहीं समझ पा रहा हूं. इंजेक्शन देने के एक घंटे में ही दमे की शिकायत ठीक होती थी. लगता है, अब की बार इसने ज़िद पकड़ी है. बाहर का वातावरण भी तो ठीक नहीं है. हो सकता है, यह निमोनिया में बदल जाये. अच्छा होगा अगर तुम इन्हें गुंटूर ले जाओ और वहां दिखलाओ.'' चलते-चलते रामय्या ने साफ़-साफ़ कह दिया.

यह सुनकर कांतय्या घबड़ा गया. तुलसी को शहर के अस्पताल में दिखलाना है तो हाथ में काफ़ी पैसे होने चाहिए. जाने कहां-कहां से वह पैसे बटोरकर ला रहा था, पर सारी की सारी रक़म खेती की पूंजी के लिए पूरी नहीं पड़ रही थी. एक सप्ताह पहले ही वह फ़सल कटाने और उसका ढेर बनाने के लिए हाथ में फूटी कौड़ी भी न होने की हालत में धान के व्यापारी सूरय्या की शरण में गया था.

''सूरय्या! महसूल के बाद अनाज उठाओगे न! मज़दूरों को देने के लिए मेरे पास एक रुपया भी नहीं बचा है. मेरे लिए पहले पांच हज़ार का तो बंदोबस्त कर देना.'' यह कहते हुए कांतय्या उससे अनुनय करने लगा.

''मेरे पास कहां है मामा! मिल के साहूकार ने हाथ उठा लिये कि अब मुझसे नहीं हो पायेगा. दो रुपये के ब्याज पर कल ही एक लाख रुपये लाया था. तुम जैसे लोगों को देने में तो एक घंटा भर भी नहीं लगा.'' सूरय्या ने नख़रे दिखाये.

''तुम ही ऐसा कहोगे तो काम कैसे चलेगा? मेरी तकलीफ़ों से तुम वाकिफ़ हो. तुम ही मना करो तो मैं और किससे मांगूं? दस रुपये कम हों या ज़्यादा, एक हिसाब से हमेशा इतने बरसों से अनाज तुम्हीं को दे रहा हूं न! अब तुम ही बताओ, कभी मैंने किसी और से मांगा क्या?'' वह भी अड़ गया.

''बोल दिया न! अगर मेरे पास होता तो क्या तुम्हारे लिए झूठ बोलता? अब की बार कहीं और तलाश करो.'' सूरय्या इतनी आसानी से माननेवाला नहीं था.

''कोई रास्ता नहीं बचा, इसीलिए मैं ढूंढ़ते हुए तुम्हारे पास आ गया हूं. पिछले दिनों तो ऐसा था कि मज़दूरी देने के लिए चार दिन रुकने को हम कहते तो मज़दूर रुक जाते थे. लेकिन अब ऐसा नहीं है. काम करने के लिए जैसे ही वे खेत की मेंड पर आ जाते हैं, तुरंत उनके हाथ में मज़दूरी के पैसे रखने होते हैं. अगर हम पैसों के लिए उनके अपने यहां बार-बार चक्कर लगवाते हैं तो जब काम के लिए उनकी ज़रूरत पड़ती है तब उनका अता-पता नहीं होता.'' कांतय्या ने समस्या को विस्तार से बताया.

सूरय्या थोड़ी देर विषय को टालता रहा कि तंग आकर कांतय्या ख़ुद ही चला जायेगा. वह उसे व्यापार में विद्यमान बाधाओं, मिल मालिकों द्वारा दी जा रही तकलीफ़ों, अधिकारियों द्वारा ऐंठी जा रही रिश्वत के बारे में बताता रहा. लगातार अपना दुखड़ा रोता रहा कि इतने भारी नुक़सान से भरा व्यापार और कोई नहीं है.''

आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित.

विशेष : *टीवी और फ़िल्म के लिए पटकथा लेखन. सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में श्री अखिल भारतीय स्तर पर आकाशवाणी पुरस्कार (२०००) तथा राज्य स्तर पर आंध्रप्रदेश सरकार के स्वर्ण नंदी पुरस्कार (१९९७-९८, १९९९ और २००७) सहित कई पुरस्कार प्राप्त.*

संप्रति : *आप आंध्रप्रदेश सरकार के स्वास्थ्य विभाग में अधिकारी के रूप में २०११ में सेवानिवृत्त हैं तथा प्रगतिशील लेखक संघ के गुंटूर जिला स्तर पर महासचिव एवं आंध्रप्रदेश राज्य स्तर पर सचिव के रूप में सक्रिय है.*

फ़्लैट नं. १०१, पूर्णिमा अपार्टमेंट्स, ४/१, अशोक नगर, गुंटूर (आं.प्र.)-५२२००२
फ़ो. : ९२९१५३०७१४

अनुवादक :
डॉ. के.वी.नरसिंह राव
ताडेपल्लिगूडेम, जि.- पश्चिम गोदावरी, कुंचनपल्ली (आं. प्र.)-५३४१०१

सूरय्या के मुंह से इस प्रकार की बातें सुनना कांतय्या के लिए कोई नयी बात नहीं थी. सारा गांव जानता था कि सूरय्या की बातों में सच्चाई नाममात्र की ही होती है.

दुनिया के सामने यह खुली वास्तविकता है कि ज़मीन पर भरोसा रखते हुए फ़सल उगानेवाले किसानों की हालत साल-दर-साल ख़राब होती जा रही है. दूसरी ओर फ़सलों का सौदा करनेवाले दलाल तो मोटे-तगड़े होते जा रहे हैं. उधार की दलदल में धंसकर किसान ग़रीब होते जा रहे हैं तो व्यापारी लाभ ही लाभ कमाते हुए धन-कुबेर बन रहे हैं.

जायदाद के बंटवारे के अंतर्गत सूरय्या के हिस्से में केवल एक एकड़ ज़मीन आयी थी. पर आज वह दस एकड़ का मालिक बन बैठा था. शहर में सस्ते भाव पर ख़रीदे गये भूखंडों की क़ीमत लाखों तक बढ़ गयी थी. उसने अपना एक आलीशान मकान बनवाया. उसके दोनों बच्चे शहर के कॉलेज में लाखों के ख़र्च से पढ़ाई कर रहे थे. लेकिन दूसरों के सामने तो वह अपनी ग़रीबी का रोना रोता. गांववाले सब कुछ जानते हुए भी अनजान बन जाते थे. यह सब एक नाटक था.

''तुम्हारा बेटा शहर में कोई नौकरी करता है न! तुम कहो तो पूंजी के लिए वह मदद नहीं करेगा क्या?'' सूरय्या ने बातचीत का रुख़ मोड़ दिया.

''कौन-सी बड़ी नौकरी है सूरय्या! उसकी कमाई तो उसके बीवी-बच्चों के पोषण के लिए पूरी नहीं पड़ रही है तो फिर मुझे क्या भेजेगा? उसे अपनी ससुराल से अनाज मिल रहा है, इसलिए वह घर के सदस्यों का पेट भर पा रहा है. बेटा भले ही मुझे कुछ नहीं दे सके तो न दे, पर मैं चाहता हूं कि वह मुझसे कुछ न मांगे.'' उसने अपने बेटे के परिवार के बारे में बताया.

सूरय्या समझ गया कि कुछ न कुछ दिये बिना कांतय्या उसकी चौखट से बाहर नहीं जानेवाला है. उसने कांतय्या को तीन हज़ार देकर कहा कि इससे काम चलाओ. उसने जब ज़िद की कि फ़सल कटवाने और उसका ढेर बनवाने के लिए यह पूरा नहीं पड़ेगा, तो फिर एक और हज़ार लाकर उसके हाथ में थमा दिया.

''सुनो जी! लोग कह रहे हैं कि चक्रवात आया है. कहीं साल भर की मेहनत पानी में डूब न जाये. मज़दूरों को तलाशकर कटी फ़सल का ढेर बनवा लो न!'' इतनी तकलीफ़ में भी तुलसी अपनी जान से भी अधिक फ़सल को लेकर ही परेशान थी.

''यही सोच रहा हूं. रामय्या कह रहा है. गुंटूर ले जाओ और बड़े डॉक्टर को दिखलाओ. तुम्हारी तकलीफ़ को देखते हुए लगता है, वहां हो आना ही अच्छा है.'' सांस फूलने से ऊपर-नीचे हो रहे अपनी पत्नी के सीने को देखते हुए कांतय्या ने कहा.

''मेरी कोई नयी बीमारी है क्या? जब से जनम लिया है तब से है यह. फ़सल भाड़ में जायेगी तो खाने के लाले पड़ेंगे. उधार लेते-लेते ज़िंदगी एक नरक बन जायेगी. मेरी बात सुनो और आज सबसे पहले कटी फ़सल का ढेर बनवाने का काम देखो. इतने में मेरी जान निकल नहीं जायेगी.'' उसने अपने रोग को हल्के तौर पर लेते हुए कहा. वह जो पीड़ा सह रही थी, उसे उसने बाहर व्यक्त किये बिना दबाये रखा.

तुलसी को उस स्थिति में छोड़कर कांतय्या वहां से उठ नहीं सका. दमे की बीमारी से वह साल में छह महीने ठीक रहती और छह महीने परेशान. वर्षा और सर्दी के मौसम तो दवा के ज़ोर से ही निकल जाते. वह तो ऐसी औरत नहीं थी जो बीमार होने का बहाना बनाकर आराम करती बैठे. वह दर्द से कराहते हुए भी एक ओर घर का कामकाज संभालती और दूसरी ओर खेत का काम भी. रोग को भी जीवन के एक हिस्से के रूप में स्वीकार करते हुए उसे सहने की वह आदी हो चुकी थी.

ऐसी स्थिति में कांतय्या को अपने बेटे रत्नम की याद आती. उसे चिंता होती कि ऐन वक़्त पर वह उसके पास नहीं है. उसके रहने से यह सहूलियत होती कि या तो वह या उसका बेटा तुलसी को शहर ले जाकर अस्पताल में दिखला आता. अकेले इस तरह परेशान होने की नौबत नहीं आती.

रत्नम ने इंटर तक ही पढ़ाई की थी. अपने गांव से कुछ ही दूर पर स्थित क़स्बे में जूनियर कॉलेज होने के कारण वह कम से कम इतना तो पढ़ सका था. इससे आगे पढ़ने की अपनी हैसियत नहीं है, यह दोनों को पता था. वहीं पर उसके बेटे की पढ़ाई रुक गयी थी. फिर तो वह घर में रहकर उसके कामकाज में हाथ बंटाता रहा.

पांच साल पहले उसने अपनी बेटी के हाथ पीले किये

थे. सगुन के तौर पर उसने एक एकड़ तर ज़मीन उसे उपहार में दे दी थी. अब तो केवल एक ही एकड़ बचा था. जिस घर में वे रहते थे वह एक पुराने ज़माने का खपरैल वाला मकान था. यही वह एकमात्र जायदाद थी जो उसके बाद उसके बेटे को विरासत में मिलनेवाली थी. बेटी की शादी होने के अगले ही वर्ष उसने अपने बेटे का भी ब्याह कर दिया था.

बेटी के अपनी ससुराल जाने के बाद तुलसी काम के बोझ से बेहाल थी, यह कांतय्या ने देखा था. बेटी की जगह भरने के लिए बहू लाने से वह घर को संभाल सकेगी, इस आशा से उसने बेटे के लिए रिश्ता तय कर दिया था. उसकी आशा के अनुरूप बहु भी योग्य साबित हुई. विनम्रता के साथ वह अपनी सासू मां की हर प्रकार से सहायता करने लगी.

दो बच्चों का बाप बनने के बाद रत्नम के सोचने का रवैया बदलने लगा. इसके पीछे बहू की प्रेरणा भी होगी, यह उसने कभी नहीं सोचा था. परिवार की आय में कोई बढ़ोत्तरी न रही, इसके विपरीत ज़रूरतें धीरे-धीरे बढ़ने लगीं. घर में तनाव और समझौतों ने मनमुटाव के लिए मार्ग प्रशस्त किया.

''बापू! हम शहर जाकर रहेंगे.'' बेटे की बातों ने उसको आहत कर दिया.

''वहां क्या है रे? वहां कैसे रह पाओगे?''

''यहां भी क्या है, बताओ बापू!'' प्रश्न का उत्तर प्रश्न ही था.

''क्यों नहीं है? घर है, खेत है... यह सब तो है न?''

''एक एकड़ खेत से दो परिवार कैसे जी सकेंगे? साल भर में मेहनत कितनी हो रही है और अंत में बचता कितना है? खाने-पीने और कपड़ों के लिए ही पूरा नहीं पड़ रहा है. जैसे कहते हैं न कि ढाक के वही तीन पात. कल को बच्चों की पढ़ाई और उनके भविष्य का क्या होगा?''

कांतय्या पहले तो नाराज़ हुआ, पर उसने अपने बेटे के उलाहने के पीछे जो कठोर वास्तविकता थी उसे समझने की कोशिश की. वातावरण अनुकूल होकर अगर बराबर दो फ़सलें हाथ में आतीं तो सारे ख़र्चों को घटाने के बाद एक साल में एक एकड़ पर पंद्रह हज़ार भी बचते तो बड़ी बात थी. इस सीमित आमदनी में इस महंगाई के ज़माने में दोनों का जीवन-यापन करना वाकई बहुत कठिन था.

प्रकृति की प्रतिकूलता अथवा परिवार के सदस्यों की बीमारी सिर पर आ पड़ने का मतलब उधार के शिकंजे में कस जाना ही था. आज ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई कि हल जोतनेवाले किसान और करघा चलानेवाले बुनकर के लिए कोई आसरा नहीं रहा. किसी भी क्षेत्र में काम करनेवाले को अपने भविष्य को लेकर ढेर सारी आशा रहती है. लेकिन अकेला किसान ही ऐसा है जो किसी आशा के बिना अपनी ज़िंदगी को घसीटने के लिए विवश है. यही कारण है कि खेतीबाड़ी को हानिकारक समझकर कृषक-पुत्र गांव की राह को छोड़कर शहर के मार्ग पर चल पड़े हैं. कांतय्या को लगा कि उसका बेटा भी इसके लिए अपवाद नहीं है.

''बापू! मुझे एक भवन-निर्माण कंपनी में पर्यवेक्षक की नौकरी मिली है. रहने के लिए आवास और माहवार पांच हज़ार का वेतन मिलेगा. आगे चलकर बच्चों की पढ़ाई शहर में हो तो अच्छा होगा.'' उसने विस्तार से अपने पिता को समझाया.

वह मना कैसे कर सकता था? साल भर में साठ हज़ार की आमदनी. छाया में बैठकर काम करेगा तो पगार बिला शक उसके हाथ में आ जायेगी. यह उस किसान की आय के समान थी जिसके पास चार-पांच एकड़ हों. वह भी सारी परिस्थितियां अनुकूल हों तभी तो कुछ बचने की उम्मीद होती. उसके बाद उसके बेटे को मिलनेवाली तो सिर्फ़ एक एकड़ ज़मीन ही थी. उसके बाद फिर उसके बच्चे प्रत्येक केवल आधा एकड़ ही बांट सकेंगे. इससे वे जीवन में आगे कैसे बढ़ सकेंगे?

''ठीक है. जैसी तुम्हारी इच्छा.'' कांतय्या अपने बेटे के निर्णय के आगे हार मानने के लिए विवश हो गया.

''अभी तक ऐसे ही बैठे रहे तो कैसे काम चलेगा? बारिश की बात होते ही सारे के सारे किसानों के लिए एक ही साथ मज़दूरों की ज़रूरत आन पड़ती है. आगे की न सोचो तो बरबाद हो जायेंगे हम.'' यह कहते हुए तुलसी ने कांतय्या को बाहर खदेड़ दिया.

कांतय्या मज़दूरों की तलाश में जुट गया. जान-पहचान वाले जत्थों के मज़दूरों ने तब तक काम के लिए बात पक्की कर ली थी. जाने कहां-कहां के किसान अन्य गांवों से भी आकर मज़दूरों को खोज रहे थे. उनमें होड़

लगी थी. किसानों की आवश्यकता को जानकर मजदूर अपना भाव बढ़ाते जा रहे थे. मानो ख़तरा टल जाये तो गनीमत है, और कोई मोल भाव किये बिना मज़दूरों को मुंहमांगी मज़दूरी देने के लिए किसान तैयार हो रहे थे.

अंधेरा हो गया. कांतय्या मज़दूरों की तलाश जारी रखे हुए था. जितनी देर हो रही थी, उतनी ही उसकी हिम्मत जवाब देने लगी थी. समय पर मज़दूर न मिले तो इससे होनेवाली हानि के बारे में सोचने से उसे डर लग रहा था. एक ओर पुराने उधार का बकाया चुकाना अभी बाकी था और उसके साथ नया उधार भी जुड़ जाये तो वह इस जंजाल से कब तक उबर सकेगा? लेकिन उधार की दलदल में धंस जाने के अलावा और कोई चारा नहीं था.

ठीक एक सप्ताह पहले उसकी बेटी का लिखा हुआ पत्र उसको याद आया. इधर-उधर किये हुए उधार के दबाव में वह पिछले वर्ष बंटाई के दस हज़ार की रक़म अपने बेटी को नहीं दे पाया था. इस साल फ़सल को गाहना पूरा होते ही दोनों वर्षों की बंटाई के रुपये नहीं ला दोगे तो सास और पति उसे चैन से जीने नहीं देंगे, इस बात से उसने पहले ही उस पत्र में आगाह कर दिया. उसने सोचा कि उसके कारण उसकी बेटी की गृहस्थी में अशांति उत्पन्न नहीं होनी चाहिए. अपने आपको गिरवी रखकर भी अब की बार बेटी को उसकी बंटाई का पैसा चुकाना ही पड़ेगा.

कृषकों को बीज बोने से लेकर अनाज के हाथ में आने तक कितने ही ख़तरों से जूझना पड़ता है. समय पर वर्षा होनी चाहिए. जुताई करानी चाहिए. ज़मीन तैयार की जानी चाहिए. अच्छी किस्म के बीज मिलने चाहिए. उनसे पौध निकलने की क्यारी बनाना चाहिए. खेती के लिए पानी उपलब्ध होना चाहिए. फिर बुआई हो जानी चाहिए. पौधों को शक्ति मिलने के लिए खाद डालनी चाहिए. कीड़ों और अन्य बीमारियों से बचाने के लिए कीटनाशक दवाएं छिड़कनी चाहिए.

कटाई, उसके बाद की प्रक्रिया, कटी फ़सल का ढेर बनाना, फ़सल को गाहना... जाने कितने ही काम हैं? सूखा या बाढ़ न हो और मौसम साथ दे, तभी तो ठीक से फ़सल हो जाती है. इस पर भी उचित भाव मिले, तभी तो पूंजी को निकालकर कुछ न कुछ रुपये किसान के लिए बच पाते हैं.

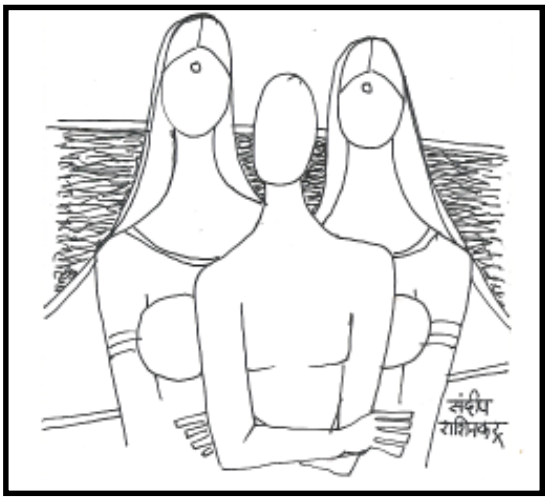

परिश्रम के लिए उचित फल मिलेगा, इसकी गारंटी के बिना ही किसान कहलानेवाले प्राणी को कितनी मौतें मरनी होती हैं. इस साल फ़सल कम हो जाने के आसार थे. वातावरण अनुकूल न होने और समय पर उर्वरकों के न मिलने से सारा कृषक-वर्ग बेहाल हो उठा. खाद-वितरण में भ्रष्टाचार और अनाचार घर कर गये तो किसान अपना सब्र खो बैठे और सड़क पर आ गये. उन्होंने सरकारी दफ़्तरों पर हमला किया.

क्रोध में उन्होंने विरोध प्रदर्शन किये. धरने दिये. पुलिस की लाठियां टूटीं. किसानों के सिर फूटे. वे जेल गये. इस तरह के अनुभव से अनजान कांतय्या को भी लाठियों की मार खानी पड़ी.

''क्यों कांतय्या जी! आप यहां इस वरकाडपालेम गांव में घूम रहे हैं. शायद आप मज़दूरों की तलाश कर रहे हैं....'' चिंपिरय्या की आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़ा.

''हां भाई! लगता है, जिसे ढूंढ़ रहा हूं, वही मेरे सामने आ गया है. दो एकड़ की कटी फसल का ढेर बनाना है. अपने जत्थे को लाओगे क्या?'' उसने उसे काम बता दिया.

''सरपंच जी ने बुलवाया तो वहां जा रहा हूं. मेरे ख्याल से कटी फ़सल का ढेर बनाने के लिए ही होगा.'' मामला कुछ पेचीदा प्रतीत हो रहा था.

''उन्हें किस बात की कमी है भैया? एक को बुलाने से तुम्हारे जैसे सैकड़ों हाजिर होंगे. मैं तो शाम को ही कामगारों की खोज में निकला हूं और तभी से ढूंढ़-ढूंढ़कर परेशान हूं. दूसरी ओर सुन रहे हैं कि चक्रवात आनेवाला है.

कटी फ़सल का कल तक ढेर नहीं बनायेंगे तो सब कुछ बरबाद हो जायेगा.'' गिड़गिड़ाने के अंदाज में उसने कहा.

''मज़दूरों के लिए तो बहुत मांग है जी! हर एक आदमी को दो सौ दिये बिना मानेंगे नहीं. आप तो हमारी बहुत जान-पहचान के हैं. आप जैसे सज्जन से हम ज़्यादा क्या मांग सकते हैं, बताइए.'' चिंपिरय्या दुनियादारी दिखा रहा था. मांग के अनुसार ही किसी चीज़ की कीमत तय होती है. प्रकृति की विपरीत स्थिति किसानों के लिए प्राणसंकट बन गयी थी. मज़दूरों की कमी के कारण किसान एक सीढ़ी नीचे खड़े थे तो मज़दूर उनसे एक सीढ़ी ऊपर. दरअसल गांवों में खेतिहर मज़दूर कम होते जा रहे थे.

ज़्यादा से ज़्यादा मज़दूरी मिलनेवाले गृहनिर्माण जैसे अनेक कामों की तलाश में शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी. गांव के किसान भी सिर्फ़ पर्यवेक्षण के आदी होकर खेत के काम स्वयं करने के लिए तैयार नहीं थे. अपने खेत बंटाई पर देकर शहर में सैर-सपाटे और मौज-मस्ती करना तो आम बात हो गयी थी. आवश्यकता के अनुसार मज़दूरों को मुंहमांगी रक़म देनी ही पड़ रही थी. ऐसी स्थिति में अगर एक रुपये के लिए आनाकानी करेगा तो दस रुपये का फटका लगनेवाला था.

''ठीक है. जैसा सब करते हैं, वैसा ही हम भी करेंगे. वे जितनी कह रहे हैं, उतनी मज़दूरी हम उन्हें दे देंगे. दस लोगों को इकट्ठा करके कल सवेरे-सवेरे खेत पर आ जाना. दोपहर तक कटी फ़सल का ढेर बन जाना चाहिए. बारिश होगी तो हम पूरी तरह बरबाद हो जायेंगे.'' बात पक्की करते हुए उसने दो सौ रुपये चिंपिरय्या के हाथ में रख दिये. कांतय्या का बोझिल मन अब हल्का हो गया और उसने घर का रास्ता लिया. वह खाट पर लेट तो गया, पर रात भर नींद उसकी आंखों से कोसों दूर थी. वह बार-बार उठकर देखता रहा कि तुलसी की हालत कैसी है और बाहर जाकर आकाश को भी ताकता रहा. इसी में सुबह हो गयी थी.

कांतय्या ने रोटी की गठरी बांध ली. एक छोटी नसैनी कंधे पर लेकर रस्से भी हाथ में लिये और खेत जाने के लिए निकल पड़ा. तुलसी के कानों में उसने कहा, ''खेत हो आऊंगा.'' उसकी तबीयत ठीक होती तो वह भी उसके साथ निकल पड़ती. उसने सोचा, कटी फ़सल का ढेर बनाकर शाम को जैसे ही वह घर लौटेगा, तुरंत पैसे का बंदोबस्त करके पत्नी को शहर ले जायेगा. लग रहा था कि उसकी जेब में जो पैसे थे वे मज़दूरों की मज़दूरी अदा करने के लिए बराबर बैठेंगे.

खेतों में जहां भी देखो, वहां खेतिहर मज़दूरों की चहल-पहल दिख रही थी. सबके सब फ़सल के ढेर बनाने के काम में पूरी तरह लगे हुए थे. मज़दूरों के साथ खेत में क़दम रखते हुए कांतय्या ने भगवान से प्रार्थना की कि शाम होने तक बारिश न आये.

उसने सोचा कि एक दिन और गट्ठे धूप में सूख जाते तो फ़सल का ढेर बनाने के लिए ठीक रहता. अनाज के ख़राब होने की संभावना होगी तो वह वर्षाकाल के समाप्त होते ही फ़सल के ढेर को गिराकर कुटाई करवा लेगा. किस्मत में जितना लिखा है, उतना ही प्राप्त होगा. यह सोचते हुए उसने अपना दिल कड़ा कर लिया.

उसने ख़ास तौर से महिला मज़दूरों को काम के लिए एक तरफ़ की जोत में नियत कर दिया. वे जो छोटे-छोटे गट्ठे बना रही थीं वे ढेर बनाने के लिए सुविधाजनक रहेंगे, यह उसका विचार था. बड़े-बड़े गट्ठर बनाने में माहिर पुरुष मज़दूरों को उसने पास वाली जोतों में लगा दिया. दोपहर होते-होते सारे गट्ठों को बांधने का काम पूरा हो गया था. गिनती में साढ़े तीन सौ गट्ठे आये थे.

कांतय्या ने अपने क़दमों से नापकर फ़सल का ढेर कितना बड़ा होना चाहिए. इसके लिए हदें तय कर दीं. बीच का गट्ठा खड़ा करके उसने चिंपिरय्या से फ़सल का गुंबदनुमा ढेर बनाने के लिए कहा. पहले उसने पुरुष मज़दूरों द्वारा बांधे गये बड़े गट्ठरों को वृत्ताकार में सजाते हुए गुंबद के आकार का ढेर बनवाया. फ़सल के ढेर के लिए लगभग आधा काम निपट गया था और उसका आधार खड़ा किया जाने लगा था. इस बीच आसमान में काले बादल छाने लगे. ठंडी हवा चलने लगी. यह देखकर कांतय्या का दिल धक-धक करने लगा. लगता था कि शायद बारिश अब आने ही वाली है.

''काम जल्दी करो. बारिश आ गयी तो सारे किये-कराये पर पानी फिर जायेगा. जरा ताकत बटोर लो. जल्दी गट्ठर ला दोगे तो ढेर बन जायेगा.'' अनुनय के अंदाज में कांतय्या ने मज़दूरों को जल्दी निपटाने के लिए कहा.

मज़दूरों ने भी अपनी पूरी ताकत लगाकर काम की गति बढ़ायी. उनकी ईमानदारी की भावना प्रकट हो रही थी कि जिस काम के लिए वे मज़दूरी ले रहे हैं, उसके प्रति

न्याय करना चाहिए. जोतों में कीचड़ को अपने क़दमों से रौंदते हुए वे गट्ठर लाकर नसैनी के जरिए ढेर बनाने के लिए पहुंचा रहे थे. चिंपिरय्या ने भी ढेर के ऊपर से मज़दूरों को हांकते हुए आधार रखने का काम पूरा कर दिया. अब तो केवल ढेर को एक व्यवस्थित ढंग से सहेजकर रखना ही बाकी रह गया था.

अंतिम चरण में महिला मज़दूरों द्वारा बनाये गये हल्के गट्ठर वे फुर्ती से ला पटक रही थीं तो चिंपिरय्या उनमें से गट्ठों को अलग करके ढेर पर सहेजते हुए सुंदर ढंग से उसका निर्माण कर रहा था. यह काम पूरा होते-होते बूंदाबांदी होने लगी. फ़सल के ढेर पर कलगी की तरह गट्ठर लगाने के बाद उतरने का रास्ता बंद करते हुए चिंपिरय्या जब तक फ़सल के ढेर से नीचे उतर आया, तब तक पानी का जोर बढ़ गया. सभी ने राहत की सांस ली.

उसने एक-एक मज़दूर को दो सौ की दर से दस मज़दूरों के लिए दो हज़ार का हिसाब लगाया और अग्रिम दिये हुए दो सौ को काटकर बाकी पैसे चिंपिरय्या के हाथ में दे दिये. फिर जब अपनी जेब में देखा तो एक सौ भी नहीं बचा था.

कांतय्या ने नसैनी अपने कंधे पर ले ली. अपनी जीत की ख़ुशी में लड़ाई के मैदान से लौटनेवाली बहादुर सिपाही की तरह जोरदार बारिश में भीगते हुए उसने खेतों की मेंड़ों से होते हुए गांव की राह ली. तब तक कटी फ़सल का ढेर बनाने की धुन में वह बाकी सब कुछ भुला बैठा था. फ़सल की रक्षा करने के एकमात्र लक्ष्य के साथ उसे समय का पता नहीं चला था. कांतय्या को अब घर-बार और घरवाली की याद हो आयी. पत्नी की हालत कैसी होगी, यह विचार मन में आते ही उसे घबड़ाहट होने लगी. तुलसी की तरह फ़सल के नुक़सान से बचाव करने की उसकी ख़ुशी को बांटनेवाला उसके घर में और कोई नहीं था.

कांतय्या जब तक गांव के अंदर दाख़िल हुआ तब तक काफ़ी अंधेरा हो चुका था. लगता था कि शायद बिजली गुल हो गयी थी. घरों में मिट्टी के तेल से जलती ढिबरियां टिमटिमाती हुई रह-रहकर जोर से आ रही हवा के कारण विचलित हो रही थीं. बारिश की वजह से मिट्टी की सड़कों पर पानी बह रहा था और वे कीचड़ से लथ-पथ हो रही थीं. पानी के जोर के कारण लोगों का आना-जाना भी लगभग बंद हो गया था.

कांतय्या पूरी तरह भीग चुका था. जब उसने अपने घर के अंदर क़दम रखा, तो देखा कि वहां गहरा अंधेरा छाया हुआ था. वहां अभी तक दीप नहीं जलाया गया था. उसका दिल जोर से धड़कने लगा. उसने तुलसी को आवाज़ दी. कोई जवाब नहीं मिला. अंधेरे में ही टांड़ में रखी माचिस के लिए उसने हाथ से टटोला. ढिबरी जलाते हुए उसके हाथ कांपने लगे. ढिबरी की रोशनी में वह खटिया पर लेटी हुई तुलसी के चेहरे को देखता रहा गया.

''तुलसी! ऐ तुलसी!'' आवाज़ देते हुए उसने अपनी पत्नी को हाथ से थपथपाया. उसके हाथ को उसका लकड़ी की तरह पथराया हुआ शरीर छू गया. जिस तुलसी को फ़सल का ढेर बनाने का आनंद उसके साथ बांटना था, आख़िर वह कांतय्या को दु:ख बांटकर चली गयी थी.

''अरी भागवान! कटी फ़सल का ढेर बन गया है. हमारी फ़सल पानी में डूबने से बच गयी है!'' यह कहते हुए कांतय्या जोर से रोने लगा. उसकी चीख़-पुकार बादलों की गड़गड़ाहट के बीच किसी को नहीं सुनाई दे रही थी.

❖❖❖

लघुकथा

पहचान तो लिया!

✍ बालकृष्ण गुप्ता 'गुरू'

दरवाज़ा खोलने वाले आठ वर्षीय रमेश को वे दोनों कुछ कहते इससे पूर्व ही वह दौड़ता हुआ अंदर चला गया, ऊंची आवाज़ में यह कहते हुए, 'दादाजी, दादी दरवाज़े पर ढेर सारा सामान लेकर कोई आये हैं.'

'बेटे, ये तुम्हारे मम्मी-पापा हैं, यह मेरा बेटा है. और तुम इनके बेटे हो. ये सात वर्ष तक विदेश में थे.' दादाजी ने समझाया.

बच्चे के ध्यान में आया कि टीवी के ऊपर रखी पापा-मम्मी की फ़ोटो से इन दोनों का चेहरा मिलता-जुलता है.

✍ डॉ. बख्शी मार्ग,
जिला : राजनांदगांव (छत्तीसगढ़)
खैरागढ़-४९१८८१

आमने-सामने

अभिव्यक्ति के सारे रास्ते बंद नहीं हुए हैं!

✍ *पलाश विश्वास*

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा , डॉ. निरुपमा राय और सैली बलजीत से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है पलाश विश्वास की आत्मरचना.

हमारे लोगों को जन्मदिन मनाने की आदत नहीं है. दरअसल उत्सव और रस्म हमारे यहां खेती बाड़ी और जान माल की सुरक्षा के सरोकारों से संबंधित हैं, धर्म और राजनीति भी. हमेशा की तरह मेरे परिवार और मेरे गांव से मेरे जन्मदिन पर इस बार भी कोई संदेश नहीं आया. लेकिन १७ मई की रात से फेसबुक पर संदेशों का धुंआधार होता रहा. १८ की रात बारह बजे के बाद भी. इससे मैं अभिभूत हूं. सबसे ज़्यादा संदेश पहाड़ से आये और सबसे कम बंगाल से, जहां मैं १९९१ से बना हुआ हूं. मैं इससे गौरव महसूस नहीं कर रहा. सैकड़ों संदेशों का अलग-अलग जवाब देना संभव नहीं है. पर फेसबुक के मित्रों की सदाशयता का आभारी हूं. इस प्रकरण से मेरी यह धारणा और मज़बूत हुई है कि जैसे राम चंद्र गुहा ने लिखा है कि मीडिया कॉर्पोरेट के पे–रोल पर है और हम लोग क़रीब चार दशक से ऐसा ही कह रहे हैं, इसके विपरीत अभिव्यक्ति के सारे रास्ते बंद नहीं हुए हैं बशर्ते कि हमें उनके इस्तेमाल की तमीज़ हो और हमारे सरोकार भी ज़िंदा हों!

१८ मई १९५८

नैनीताल की तराई में पुनर्वासित बंगाली शरणार्थी परिवार से. पिता दिवंगत पुलिन कुमार विश्वास अखिल भारतीय शरणार्थी नेता और १९५८ में ढिमरी ब्लॉक किसान विद्रोह के श्री नेता. एम. ए अंग्रेजी साहित्य और भाषा में. प्राइमरी शिक्षक पीतांबर पंत और जीआईसी नैनीताल के ताराचंद्र त्रिपाठी के निर्देशन में साहित्य और समाज में विशेष दिलचस्पी. शरणार्थी समस्या और जनांदोलनों से जुड़ाव के कारण हिंदू में लखन, पत्रकारिता छात्र जीवन से. नैनीताल समाचार, पहाड़ और युगमंच से शुरुआत.

दो कहानी संग्रह 'ईश्वर की ग़लती' और 'अंडे सेंते लोग' प्रकाशित. यत्र-तत्र कुछ कविताएं भी प्रकाशित. 'उपन्यास अमेरिका से सावधान' के जरिए साम्राज्यवाद विरोधी अभियान पहले खाड़ी युद्ध के बाद बजट २०११ पर एक पुस्तक प्रकाशित.

१९९३ से २००१ तक मैं जब 'अमेरिका से सावधान' लिख रहा था ('कथाबिंब' में इस उपन्यास के कुछ अंश अवश्य छपे थे) तब देश भर में लगभग सभी विधाओं में मेरी रचनाएं प्रकाशित हुआ करती थीं. लेकिन चूंकि शुरू से मैं मुख्यधारा के बजाय हाशिये का लेखक रहा हूं और आलोचकों ने मेरी कोई सुधि नहीं ली, इस पर कोई हंगामा नहीं बरपा. दो-दो खाड़ी युद्ध बीत गये. भूमंडलीकरण का पहला चरण पूरा हो गया, पर कॉर्पोरेट साम्राज्यवाद पर नब्बे के दशक में लिखे और व्यापक पैमाने पर छपे मेरे उपन्यास की चर्चा भूलकर भी किसी ने नहीं की. लोग अरुंधति को छापते रहे, क्योंकि वे सेलिब्रिटी हैं. हाल में जब बांग्ला साहित्यकार महाश्वेता देवी ने 'हिंदुस्तान' में एक टिप्पणी कर दी तो कुछ मित्रों को ज़रूर याद आया. पर हिंदी के पाठक समाज को हमारे लिखे की कोई परवाह नहीं थी और न हमारा लिखा उन तक पहुंच सकता था. मुख्यधारा में तो शुरू से हम अस्पृश्य रहे हैं, पर आहिस्ते-आहिस्ते लघु पत्रिकाओं ने भी हमें छापना बंद कर दिया. पर हमारे पास मुद्दे इतने ज्वलंत और हमारे वजूद से जुड़े रहे हैं कि लिखे बिना हमारा काम नहीं चलता था.

इंटरनेट पर तब न फेसबुक था और न ब्लॉग ईजाद हुआ था. ट्विटर की त्वरित टिप्पणियां भी नदारद थीं. अंग्रेज़ी माध्यम और अंग्रेज़ी साहित्य का छात्र होने के बावजूद हमने २००३ तक अंग्रेज़ी में लिखने का कभी दुस्साहस नहीं किया. तब याहू ग्रुप्स थे और वहां अच्छा खासा संवाद जारी था. हमने इस माध्यम को अपनाने का फैसला किया और अपनी बरसों अभ्यास से बाहर की भाषा अंग्रेज़ी में लिखना चालू कर दिया. तब याहू में हिंदी का प्रचलन नहीं था. अंग्रेज़ी में देश-विदेश में छपने भी लगा. फिर ब्लॉग का प्रचलन हुआ. हमारे मित्र डॉ. मांधाता सिंह लगातार लिख रहे थे और दूसरे मित्र भी सक्रिय थे. लेकिन हिंदी में इनस्क्रिप्ट टाइपिंग का आदी न होने और देर से यूनीकोड आने की वजह से नेट पर हिंदी में लिखना मेरे लिए मुश्किल काम रहा. मैंने एनडीटीवी, इंडिया टाइम्स और सिफी ब्लॉग पर लिखना शुरू किया. वेब दुनिया में हिंदी में लिखने का अभ्यास करता रहा अलग. प्रतिक्रिया भी कड़ी होने लगी. एक वक़्त तो एनडीटीवी की पत्रकार बरखा दत्त ने सबको मेल भेजकर मेरे बहिष्कार का आव्हान तक कर दिया. एनडीटीवी के ब्लॉग मॉडरेट किये जाने लगे और मैं हमेशा के लिए काली सूची में दर्ज हो गया. सिफी ब्लॉग ख़त्म ही हो गया और इंडिया टाइम्स में पोस्टिंग बंद हो गयी. बांग्लादेश न्यूज़ पर रोज़ाना मैं छपता था पर अमेरिका से उसके हितैषियों ने इतना तेज़ मुहिम छेड़ा हमारे खिलाफ कि वहां भी लिखना बंद हो गया.

२००५ तक संपादकों के कहे मुताबिक़ और उनकी मांग के मुताबिक़ न लिखने के कारण मेरा लघु–पत्रिकाओं में छपना भी बंद हो गया. हारकर मैंने अपनी सारी रचनाएं कबाड़ीवाले को बेच दीं. 'अमेरिका से सावधान' के प्रकाशित और अप्रकाशित अंश भी. अब वह किताब कभी नहीं आयेगी. बीच में कुछ दिनों कविताएं भी लिखी थीं. तो हमने कविताओं और कहानियों की भी तिलांजलि दे दी.

२००१ में पिता की मौत के बाद शरणार्थी आंदोलन मेरे वजूद का हिस्सा बन गया. पहले से ही मैं मुद्दों पर लिखना पसंद करता रहा हूं और कोलाहल का दोषी रहा हूं. पर २००१ के बाद मेरे लिखने का मकसद सिर्फ़ आंदोलन और आंदोलन है. नतीजतन मैं मीडिया और साहित्य दोनों से निर्वासित हो गया. मैं बाज़ार के हक़ में नहीं, लगातार बाज़ार के खिलाफ लिखता रहा हूं. बतौर आजीविका पत्रकारिता की नौकरी में भी मेरे कुछ होने की संभावना नहीं थी. कम से कम 'जनसत्ता' ऐसा अख़बार है कि जहां बाज़ार के हक़ में लिखना नौकरी की शर्त नहीं है, इसलिए तमाम गिले शिकवों के बावजूद 'जनसत्ता' में बना रहा और आगे कहीं जाने की योजना भी नहीं है. मेरे पास अपना कंप्यूटर तो हाल में हुआ वरना साइबर कैफ़े से ही मैं अपना काम करता रहा हूं जैसे मेरा बेटा एक्सकैलिबर स्टीवेंस मुंबई से कर रहा है क्योंकि वह एक दम फुटपाथ पर है.

पर अंग्रेज़ी में लिखकर अपने लोगों को संबोधित करना मुश्किल है, यह तो हमारे गुरूजी ताराचंद्र त्रिपाठी ने हमें जीआईसी में अच्छी तरह समझा दिया था. उन्होंने कहा था कि अंग्रेज़ी सीखो क्योंकि अंग्रेजी सत्ता की भाषा है और सत्ता को संबोधित करने के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान ज़रूरी है. तब मैं सिर्फ़ बांग्ला में लिखा करता था क्योंकि वह मेरी मातृभाषा है. पर गुरूजी ने मुझे यक़ीन दिलाया कि हिंदी भी मेरी मातृभाषा है और अपने लोगों को संबोधित करने के लिए मुझे हिंदी में ही लिखना होगा. पर लगभग एक दशक

तक मैंने गुरूजी के आदेश का उल्लंघन किया और हिंदी के बजाय अंग्रेज़ी में लिखता रहा. गुरूजी ने हिंदी या बांग्ला में न लिखने के लिए नहीं कहा था बल्कि हिदायत दी थी कि हर हाल में हिंदी में भी लिखना है.

हमने देखा कि किस तेज़ी से याहू और गूगल समूहों में संवाद की गुंजाइश ख़त्म कर दी गयी. अश्लील सामग्री और स्पैम के जरिये यह मंच निष्प्रभावी बना दिया गया. जन्मदिन से मैंने बात दरअसल फेसबुक और सोशल मीडिया की बढ़ती ताक़त की ओर इशारा करने के लिए शुरू की. हम जैसे बिना चेहरे के कबंध, अछूत, शरणार्थी के जीने मरने का क्या? ग़नीमत है कि हम मरे-खपे नहीं और जैसे भी हों प्रभाष जोशी की कृपा से 'जनसत्ता' में आ गये. हमारे यहां शरणार्थी उपनिवेश में चिकित्सा का कोई इंतज़ाम नहीं था. पिताजी तो यायावर आंदोलनकारी थे. एकदम शिशु अवस्था में मैं मरणासन्न था. तब चाचा जी ने जुआ खेलते हुए होम्योपैथी और ऐलोपैथी का कॉकटेल बनाकर मेरा इलाज किया था और मैं बच निकला. थोड़ा बड़ा होने पर मेरी दादी ने मुझे यह कहानी सुनायी थी. पर मेरी दो बहनें इतनी भाग्यशाली न थीं. चाचाजी तब असम में दंगा पीड़ित शरणार्थियों के बीच काम कर रहे थे और पिताजी हमेशा आंदोलन में व्यस्त. मेरी दो–दो बहनें एक ही साथ बिना इलाज मर गयीं. घर में दादी, ताई, मां और चाची का वह सामूहिक रोदन का दृश्य मुझसे कभी भुलाया नहीं जायेगा. बाद में जब हालात थोड़े बेहतर हुए, तब हमारे भतीजे विप्लव को महज छह साल की उम्र में हमने खो दिया. उसकी लाश कंधे पर ढोने के बाद जीने मरने का या किसी जन्मदिन का हमारे लिए कोई मायने नहीं है. पर सारी संपत्ति चली जाने के बावजूद न मेरे मां बाप ने और न हमारे परिवार ने आंदोलन का रास्ता छोड़ा और न हम छोड़ेंगे. कला और उत्कर्ष, मान्यता और पुरस्कार के लिए लिखते होंगे विद्वतजन सवर्ण, उससे हमारा क्या. विचारधारा हो या साहित्य संस्कृति, अपने लोगों के काम के न हों तो उसके होने न होने का क्या मतलब है? ऐसा मेरे लगभग अपढ़ पिता का कहना था.

बंगाल में ३४ साल के वाम शासन के बावजूद हमें किसी भी भाषा में हिंदी और अंग्रेज़ी तो दूर बांग्ला में भी अभिव्यक्ति की आज़ादी नहीं मिली. इतना वैज्ञानिक सवर्ण वर्चस्व है यहां. अस्पृश्य भी छपते हैं और उन्हें पांत में जगह भी मिल जाती है पर अपने लोगों के हक़ में कुछ कहने और वर्चस्व के विरोध में आवाज़ बुलंद करने की इज़ाज़त नहीं है. अगर किसी भी मायने में मैं लेखक हूं तो भारतीय लेखक हूं, बंगाल में बाहैसियत लेखक या पत्रकार हमारी कोई पहचान नहीं है. हमारे मित्रों को याद होगा, जब प्रभाष जी बाक़ायदा जीवित थे और जनसत्ता के सर्वेसर्वा थे, तब हंस में उनके ब्राह्मणवादी होने के ख़िलाफ़ मेरी टिप्पणी आयी थी! दिल्ली में हिंदी विश्वविद्यालय के कार्यक्रम में मैंने बाक़ायदा देशभर के विद्वतजनों को और ख़ासकर हिंदीवालों को चेताते हुए कहा था कि हिंदी समाज को अपने हक़ हक़ूक़ का ज्ञान नहीं है. उसके पास जो अच्छी चीज़ें होती हैं, उसकी हिफ़ाज़त करना उसे नहीं आता. हिंदी समाज का कोई नायक नहीं है. मैंने दिल्ली के पत्रकारों और साहित्यकारों की मौजूदगी में कहा था कि जनसत्ता और हिंदी मीडिया की हत्या की जा रही हैं. हिंदी के प्रबुद्ध जन कुछ करें. तब भी हमें नौकरी की कोई परवाह नहीं थी. छपने, न छपने और प्रोमोशन पाने न पाने, बदली हो जाने की भी नहीं. मायनेख़ेज़ बात यह है कि प्रभाषजी और ओम थानवी के खिलाफ़ कड़े लफ़्ज़ों के इस्तेमाल के बावजूद उसके क़रीब सात-आठ साल बाद भी मैं जनसत्ता में बना हुआ हूं. मैं कार्यकारी संपादक ओम थानवी से नहीं मिलता, उनके साथ बैठकों से ग़ैर हाज़िर रहता हूं, सिर्फ़ इसलिए कि हालात बदलने वाले नहीं हैं. किसी और अख़बार में होता तो क्या होता?

प्रभाष जोशी या ओम थानवी ने कभी मेरे सार्वजनिक बयानों या लेखों पर प्रतिक्रिया नहीं दी. ऐसा आंतरिक लोकतंत्र नहीं मिलने वाला अन्यत्र, यह जानकर सबएडीटर बना रहना हमने बेहतर माना, अन्यत्र जाकर बेहतर वेतन बेहतर ओहदे के प्रलोभन से बचते हुए. मैंने प्रभाष जी के मरने के बाद उन पर कुछ नहीं लिखा. न हमारे कार्यकारी संपादक से हमारे मधुर संबंध हैं और सभी जानते हैं कि ज़रूरत पड़े तो मैं किसी को छोड़ता नहीं हूं. दरअसल प्रभाष जी की मृत्यु के इतने दिनों बाद उनको लेकर और जनसत्ता को लेकर सोशल मीडिया में जो चल रहा है, वैकल्पिक मीडिया की हमारी लड़ाई को पलीता लगाने के लिए वह काफ़ी है. हमारे साथ जो हुआ, वह छोड़ दें, यह सच है कि 'जनसत्ता' को 'जनसत्ता' बनाया प्रभाष जोशी ने और हम जानते हैं कि 'जनसत्ता' को बचाने की उन्होंने

मरते दम तक अकेले तक कोशिश की है, हिंदी समाज ने उनका साथ नहीं दिया. जब प्रभाष जी हालात नहीं बदल पाये, तो ओम थानवी को कोसकर लोग 'जनसत्ता' का क्या और हिंदी का क्या, समाज का क्या भला कर रहे हैं?

किसी के साथ बैठने न बैठने को लेकर हमारे दिमाग़ में कोई अवरोध नहीं है. हमारे लोग अल्प संख्यकों में हैं, बंगाल में और बंगाल से बाहर. वजूद के लिए वे पाला बदलते रहते हैं. राजनीति बदलते हैं. विचारधारा बदलते हैं. ऐसा उनका चरित्र नहीं, उनके हालात हैं. शरणार्थी समस्या और हमारे लोगों की नागरिकता की समस्या को लेकर जब हमें देश के किसी राजनीतिक दल या संगठन का साथ नहीं मिला और मूलनिवासी बामसेफ़ ने समर्थन किया, तो हम उनके मंच पर जाते रहे हैं. आगे भी ज़रूरत पड़ी तो किसी के साथ भी हम संवाद कर सकते हैं बशर्ते कि हमारे लोगों की जान बचायी जा सके. आप चाहे कितने क्रांतिकारी हों और चाहे आपका संगठन कितना ही मज़बूत हो, अगर आप और आपके संगठन की दिलचस्पी हमारे लोगों की समस्याओं में नहीं है तो आपसे हमारा क्या मतलब? असल तो मुद्दे और सरोकार हैं. हम तो अपने लोगों के लिए ममता बनर्जी, उदित राज, अखिलेश यादव, जय ललिता, सुषमा स्वराज, नवीन पटनायक किसी के साथ भी बात कर सकते हैं, हालांकि हम उनके समर्थक नहीं हैं. कोई किसी के साथ बैठ गया या कोई किसी से मिला, इस बतकही में आप तो कॉर्पोरेट साम्राज्यवाद और खुले बाज़ार के वर्चस्व को ही बढ़ावा दे रहे हैं!

सच बात तो यह है कि हिंदी समाज एक भयंकर आत्मघाती दुश्चक्र में फंसा हुआ है और इतना मासूम बना हुआ है कि बाज़ारू चालों को पकड़ने में नाकाम है. हमें तो किसी राम चंद्र गुहा, अरुंधति राय, पी. साईनाथ, महाश्वेता देवी या भारत विशेषज्ञ की बात ही समझ में आयेगी? पर उनको सुनेंगे, पढ़ेंगे और करेंगे अपने मन की. पंचों की राय सर माथे पर..... हमारे यहां होली रंगीन उत्सव है और हम ख़ुद कम रंगीन नहीं हैं. दूसरों को रंगने और उनके कपड़े फाड़ना तो हमारी संस्कृति है. लोग मुद्दों से भटककर कीचड़ उछालो अभियान में लग गये हैं. कॉर्पोरेट, आईपीएल, मीडिया तो यही कर रहा है. आनंद स्वरूप वर्मा, प्रभाष जोशी, ओम थानवी, उदय प्रकाश, दिलीप मंडल, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, वग़ैरह– वग़ैरह पर बहस केंद्रित करके हम लोग असली मुद्दों से भटक रहे हैं और ब्लॉगों

(कृपया क्रमशः पृष्ठ ५० पर देखें)

निवेदन

"कथाबिंब" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लें का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि ***विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं कागज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@yahoo.com, रचना की "कृति" फ़ाइल के साथ "पीडीएफ" फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

सागर-सीपी

'साहित्य से इश्क़ है, उस मुहब्बत का आनंद लेती हूं!'

डॉ. सुधा ढींगरा

जालंधर, पंजाब (भारत) में. बी. ए. ऑनर्स, एम. ए., पीएच. डी. (हिंदी), पत्रकारिता में डिप्लोमा.

लेखन : कविता, कहानी, उपन्यास, इंटरव्यू, लेख एवं रिपोर्ताज.

प्रकाशन : धूप से रूठी चांदनी (का. संग्रह), मेरा दावा है (का. संग्रह : संपादन), तलाश पहचान की (का. संग्रह), परिक्रमा (पंजाबी से अनुवादित हिंदी उपन्यास), वसूली (कथा-संग्रह, हिंदी व पंजाबी), सफर यादों का (का. संग्रह : हिंदी व पंजाबी), मां ने कहा था (काव्य सी. डी.), पैरां दे पड़ाह (पंजाबी में का. संग्रह), संदली बूआ (पंजाबी में संस्मरण). १२ प्रवासी संग्रहों में कविताएं, कहानियां प्रकाशित. 'कौन सी ज़मीन अपनी' कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन.

विशेष : हिंदी चेतना (उत्तरी अमेरिका की त्रैमासिक पत्रिका) की संपादिका. विभौम एंटरप्राईसिस की अध्यक्ष, हिंदी विकास मंडल (नॉर्थ कैरोलाइना) के न्यास मंडल में, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (अमेरिका) के कवि सम्मेलनों की राष्ट्रीय संयोजक. 'प्रथम' शिक्षण संस्थान की कार्यकारिणी सदस्या एवं उत्पीड़ित नारियों की सहायक संस्था

(डॉ. सुधा ओम ढींगरा से सुश्री मधु अरोड़ा की 'कथाबिंब' के लिए विशेष बातचीत)

✱आप सामाजिक एक्टिविस्ट के रूप में जानी जाती हैं, इस तरफ़ आपका रुझान कैसे हुआ?

सामाजिक सरोकारों के लिए आवेग, सनक, एक तरह की धुन होनी चाहिए, जो पैदा नहीं की जा सकती. मेरे विचार से मूल प्रवृत्ति का होना और फिर परिवेश का प्रभाव इंसान को सामाजिक एक्टिविस्ट बनाता है. अगर आप सामाजिक एक्टिविस्ट बनने की कोशिश करते हैं तो वह गहराई, शिद्दत और पैशन नहीं ला सकते जो मूलभूत प्रवृति वालों में होती है. मेरे मां-बाप आज़ादी की लड़ाई में वर्षों जेलों में रहे. पापा वामपंथी विचारधारा के थे और मां कट्टर कांग्रेसी, राजनीतिक विचारों में भिन्न होते हुए भी समाज सेवा में वे दोनों एक थे. समाज की विद्रूपताओं और कुरीतियों के लिए जीवन की अंतिम सांस तक लड़ते रहे. वे हर काम घर से शुरू करते थे. मेरा और मेरे बड़े भैया का अंतर्जातीय विवाह हुआ (प्रेम विवाह नहीं), बिना दहेज, बिना बारात के. सिर्फ़ घर के कुछ लोगों के साथ. जो पैसा उनको हमारी शादियों पर ख़र्च करना था, उसमें उन्होंने कई ग़रीब लड़कियों की शादियां करवा दीं. मधु जी, जब से मैंने होश संभाला है, हमारे क्लीनिक पर (मां-बाप दोनों डॉक्टर थे) शाम पांच बजे के बाद मज़दूरों की भीड़ रहती थी. वे बीमार होते हुए भी दिन भर मज़दूरी करने के बाद ही दवाई लेने आते थे. हमारे यहां उन्हें सस्ती और कई बार मज़दूर के हालात देखकर उसे मुफ़्त दवाई, खाने-पीने का सामान भी साथ दे दिया जाता था. बचपन से पापा को यही कहते सुना—''बेटा जिस मज़दूर को एंटी बायटिक्स चाहिए, पर उसका पेट ख़ाली है तो यह ज़हर है उसके लिए. उसका पेट भरा होगा तभी दवाई असर करेगी उस पर. अगर हम लोग थोड़ा कम खायेंगे तो हमें कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ेगा बल्कि हमारी सेहत अच्छी रहेगी. अपना कुछ हिस्सा देने से मज़दूर का पेट भर जायेगा और वह ठीक हो जायेगा. हमेशा याद रखना कि अपना थोड़ा-थोड़ा हिस्सा दे कर हम समाज को बदल सकते हैं.'' पापा की इन बातों ने मेरे भीतर पड़े हुए सामाजिक चेतना के बीजों को प्रस्फुटित किया और संस्कारों ने पुष्ट.

मैं छुटपन से ही रेडियो प्रोग्रामों में हिस्सा लेने लगी थी. उन प्रोग्रामों से जो पैसे मिलते, उन्हें अपनी पॉकेट मनी के साथ मिला कर ज़रूरतमंद सहेलियों की मदद कर देती. किशोरावस्था तक पहुंचते-पहुंचते मैं दूरदर्शन और रंगमंच की स्थापित कलाकार बन गयी थी, अख़बारों और पत्रिकाओं में छपने लगी थी. थोड़ा बहुत जो भी पैसा आता, वह सब उन बच्चों की फ़ीसों में चला जाता, जो पढ़ना चाहते थे, पर स्कूल की फ़ीस नहीं दे सकते

थे. पत्रकार बनी तो भीतर पड़ा बीज वृक्ष बन कर सामने खड़ा हो गया. अपने स्तंभ के माध्यम से, अपने साधनों से, मैं हर प्रताड़ित, पीड़ित, दलित, कमज़ोर के साथ थी. जिमख़ाना क्लब (जालंधर) के फ़ैमिली कोर्ट मामलों को अपने स्तंभ में लिखते-लिखते कब दु:खी स्त्रियों की साथी बन गयी पता ही नहीं चला. शादी के बाद जब अमेरिका आयी तो मेरे पति डॉ. ओम ढींगरा ने समाज-सेवा के मेरे वृक्ष को ख़ूब खाद, पानी दिया यानि मुझे बहुत प्रोत्साहित किया. हम बहुत सी संस्थाओं के साथ जुड़े हुए हैं जो शिक्षा, संक्रमण रोगों, कैंसर, एड्स की रोकथाम और नारी उत्थान के लिए कार्य कर रही हैं.

❋ २१वीं सदी की महिला की सामाजिक, साहित्यिक स्थिति के विषय में आप क्या सोचती हैं?

आज की महिला बहुत सचेत है, जागृत है अपने अधिकारों के प्रति अनजान नहीं. व्यावसायिक है. पुरुष के साथ मिल कर कार्य करती है. तब भी आज की महिलाएं अपनी इच्छानुसार जीवन नहीं जी सकतीं. शहरों की महिलाओं को देख कर ग़लतफहमी हो जाती है कि भारत की नारी बहुत आज़ाद है. दूसरी तरफ़ देखें तो भारत की बहुत सी आबादी अशिक्षित और पिछड़ी हुई है. २१वीं सदी में भी औरत को डायन कह कर लताड़ा जाता है. बहुएं जला दी जाती हैं. लड़की प्रणय निवेदन स्वीकार नहीं करती तो उसके चेहरे पर तेज़ाब डाल दिया जाता है. बलात्कार कम नहीं हुए हैं. सदी कोई भी हो पुरुष प्रधान समाज में महिला का दर्जा दोयम ही रहता है. महिलाएं भी उस वर्चस्व से स्वयं को मुक्त नहीं कर पातीं. भारत में तो बहुत से कारण हो सकते हैं, अधिकतर औरत आर्थिक रूप से सुदृढ़ नहीं होती और वह पुरुष पर निर्भर करती है. अमेरिका जैसे देश में आ कर भी कई भारतीय महिलाएं स्वयं उन बातों को पकड़ कर रखतीं हैं जो बचपन में उनके मन-मस्तिष्क में संस्कारों की तरह बैठा दी जाती हैं, चाहे वे कितनी भी ग़लत साबित क्यों ना हों. हर क़ुर्बानी महिला ही देती है, तभी घर चल सकता है. इस सोच के साथ वे पुरुष का तिरस्कार, निरादर, अवहेलना सहते हुए भी घर-गृहस्थी के साथ जुड़ी रहती हैं. कंपनियों में उच्च स्तर पर काम करते हुए भी वे घर में प्रताड़ित होती हैं और अपना आत्मविश्वास, स्वाभिमान तक खो देती हैं. शिक्षित स्त्रियों पर भी परिवार और समाज के इतने दबाव होते हैं कि वे चाह कर भी शोषण के विरुद्ध आज़ादी की ओर क़दम बढ़ाने से हिचकिचाती हैं. ऐसी महिलाओं को मैं शिक्षित नहीं कहती. शिक्षा का मतलब स्वयं को अपने प्रति सुशिक्षित करना और अपनी ताक़त को पहचानना है. कई कम पढ़ी-लिखी नारियों को मैंने उनके मुक़ाबले अपने प्रति अधिक सतर्क पाया है. महिलाओं के सहायतार्थ मेरा एक ग्रुप चलता है 'विभूति'. उसके द्वारा मैंने बहुत सी महिलाओं को उनका सम्मान और पहचान दिलवायी है. प्रसन्नता की बात यह है कि स्त्री समाज में, स्त्री की अपने प्रति चेतना बढ़ रही है.

कष्टमय जीवन तो महिला लेखिकाओं का भी होता है. जब तक महिला लेखिका सीमित दायरे में लिखती रहे ठीक है, जब वह अपनी बात को समाज में खुल कर कहना चाहती है, आज़ादी की लड़ाई लड़ने का प्रयास करती है तो बस वहीं से उसका संघर्ष शुरू हो जाता है. स्वतंत्रता अर्जित करने की लड़ाई में कितनी लेखिकाओं को सफलता मिली है. पर साथ ही महिला लेखिकाओं के जागरूक लेखन के कारण ही महिला

'विभूति' की सलाहकार. अमेरिका से भारत के बहुत से पत्र-पत्रिकाओं एवं वेब पत्रिकाओं के लिए लेखन. इंडिया आर्ट्स ग्रुप की स्थापना कर हिंदी के बहुत से नाटकों का मंचन कर लोगों को हिंदी भाषा के प्रति प्रोत्साहित किया. अनगिनत कवि सम्मेलनों का सफल संयोजन एवं संचालन. रेडियो सबरंग (डेनमार्क) की संयोजक. टी.वी., रेडियो एवं रंगमंच की प्रतिष्ठित कलाकारा.

पुरस्कार/ सम्मान : अमेरिका में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक कार्यों के लिए वाशिंगटन डी.सी. में तत्कालीन राजदूत श्री नरेश चंदर द्वारा सम्मानित ; चतुर्थ प्रवासी हिंदी उत्सव २००६ में 'अक्षरम प्रवासी मीडिया सम्मान.'; हैरिटेज सोसायटी नॉर्थ कैरोलाईना (अमेरिका) द्वारा 'सर्वोत्तम कवियत्री २००६' से सम्मानित; ट्राईएंगल इंडियन कम्युनिटी, नार्थ-कैरोलाइना द्वारा २००३ नागरिक अभिनंदन; हिंदी विकास मंडल, नॉर्थ कैरोलाईना, हिंदी सोसायटी, नार्थ कैरोलाइना; अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति (अमेरिका) द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं सामाजिक कार्यों के लिए कई बार सम्मानित.

101, Guymon Ct.,
Morrisville, NC-27560, USA.
(R)- 919-678-9056,
(M)- 919-801-0672
e-mail: sudhadrishti@gmail.com

आंदोलन सफल हो रहे हैं. स्त्रियों में जागरूकता लाने के लिए लिखा जाने वाला प्रेरक लेखन बहुत आवश्यक और सराहनीय कार्य है.

❋ आज साहित्य के क्षेत्र में स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श और भी जो तरह-तरह के विमर्श चल रहे हैं, उनके बारे में आपका क्या नज़रिया है?

साहित्य में तो समय-समय पर विचारधाराएं चलती रहती हैं. कभी उन्हें वाद का नाम दिया जाता है— रहस्यवाद, छायावाद, प्रयोगवाद और आज कल विमर्श हैं. लोग जब विचारधारा को प्रमुख रख कर लिखते हैं तो उस सोच का साहित्य या उसी सोच को लेकर लिखा गया साहित्य उस धारा के अंतर्गत आ जाता है. स्त्री विमर्श, दलित विमर्श और जो भी विमर्श चल रहे हैं इसी का परिणाम है. साहित्य को अगर हम साहित्य रहने दें तो बेहतर होगा. स्त्री विमर्श में कुछ महिला लेखिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. शशि प्रभा शास्त्री, ममता कालिया, मन्नू भंडारी, मेहरुन्निसा परवेज़, प्रभा खेतान, सुधा अरोड़ा, जया जादवानी, चित्रा मुदगल, उर्मिला शिरीष, मैत्रेयी पुष्पा जैसी महिला लेखिकाएं स्त्रियों को समान अधिकार दिलाकर उन्हें सम्मानपूर्ण जीवन दिलाने के लिए कटिबद्ध हैं.

❋ जालंधर से अमेरिका में रचना-बसना कैसा लगा?

बहुत सुखद, मनोरंजक पर चुनौतियों से भरा हुआ. तकनीकी तरक़्क़ी ने आज दुनियां बहुत विस्तृत कर दी है. भारत के क़स्बों तक में अमेरिका के बारे में बहुत जानकारी है. १९८२ में शादी के बाद जब मैं अमेरिका आयी थी तो मैं अमेरिका के बारे में इतना कुछ नहीं जानती थी, जितना आज के भारत से अमेरिका आने वाले जानते हैं. सांस्कृतिक झटके के साथ-साथ सबसे बड़ी चुनौती मुझे मिली, घर और बाहर के सब काम स्वयं करने की.

कम शब्दों में कहूंगी कि नये देश, परिवेश और नये संसार में नन्हीं बच्ची बन कर आंखें खोलीं और कौतूहलता से सब कुछ देखा, जाना, परखा और अपने आपको यहां के माहौल में ढाला. अब तो यहां रच-बस गयी हूं और फिर जब साथी मनपसंद का होता है तो हर चुनौती गौण हो जाती है.

❋ अमेरिका में आपको कभी भाषाई, गोरेपन को लेकर नस्लवाद का शिकार होना पड़ा?

मधु जी, ऐसा अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ. बल्कि मुझे इससे भिन्न अनुभव हुआ. शादी के बाद मैं सेंट लुईस (मिज़ूरी) आयी थी. मेरे पति उन दिनों मोनसेंटो कंपनी में वैज्ञानिक थे. सप्ताहांत वे सेंट लुईस के योग सेंटर में योग सिखाते थे. वहां के सब स्थानीय लोगों ने मुझे दिल से स्वीकार किया. मुझे यहां की संस्कृति, जीवन मूल्यों और यहां के दर्शन से परिचित करवाया. भारत के लोग समझते हैं कि अमरीकियों का कोई कल्चर नहीं. हर सभ्यता की अपनी संस्कृति होती है. योग सेंटर के लोगों ने ही मुझे अमेरिका में स्थापित होने में मेरी मदद की. भारतीय खाना, पहनना और भारत के बारे में उन्होंने मुझसे बहुत कुछ सीखा. वे सब आज भी हमारे परिवार की तरह हैं. एक बात और आपको बताना चाहती हूं कि अमेरिका में भारतीयों को बहुत सम्मान दिया जाता है. भारतीयों को यहां समृद्ध समुदाय के रूप में माना जाता है.

❋ आपने दो देशों की संस्कृतियों को देखा है, वहां के साहित्यिक माहौल को देखा है, क्या फ़र्क़ पाती हैं दोनों में?

मधु जी, दोनों देशों के साहित्यिक माहौल की कोई तुलना नहीं हो सकती. भारत में हिंदी राष्ट्र भाषा है और साहित्यकार अपने देश में बैठ कर साहित्य सृजन करते हैं, साहित्य सृजन के लिए खाद, पानी ख़ूब मिलता है. अमेरिका में हिंदी हम भारतवंशी ले कर आये हैं. अमेरिका के लोगों के लिए यह विदेशी भाषा है. अमेरिका आने के उपरांत सांस्कृतिक झटके के साथ यह झटका भी लगा कि यहां कोई साहित्यिक माहौल नहीं था. मैं साहित्यिक परिवार से आयी थी और साहित्य मेरा ओढ़ना, बिछौना था. हिंदी साहित्य के लिए यह धरती बंजर थी. घर-घर अलख जगा कर हिंदी भाषी इकट्ठे किये. फिर उनमें से लिखने का शौक रखने वाले चुने. कविता और कहानी के साथी बनाये. हालांकि भारत के कई लेखक जो भारत में स्थापित हैं, यहां आकर कुछेक कहानियां व लेख लिख कर यह राय बना लेते हैं कि साहित्यिक माहौल की क्या बात है, लिखा तो कहीं भी जा सकता है. उनका कहना है लेखक कहीं भी बैठ कर लिख सकता है. वहीं राजी सेठ के शब्दों में—''भाषा के घेरे से परे रह कर, अपनी भाषा की, देश से परे रह कर देश की, परिवेश से परे रह कर देश के रंग-रूप, तीज-त्यौहार, मिथक इतिहास को रचने की प्रेरणा

इन्हें कौन देता होगा. चेतना में ऐसी ललक कैसे पैदा होती होगी? जबकि वातावरण में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो ऐसे विकल्पों या ऐसी अंतर्धाराओं को पोषित कर सके.''

मेरे कहने का अभिप्राय है कि जब आप नये सिरे से जीवन शुरू करते हैं तो सोच भी संघर्ष करती है. चारों तरफ़ अंग्रेज़ी बोली जाती हो और हिंदी साहित्य से जुड़ा कुछ भी उपलब्ध ना हो ऐसे में वातावरण बनाना ज़रूरी हो जाता है. इंटरनेट का तो तब पता भी नहीं था. आज के अमेरिका और जब मैं आयी थी, तब के अमेरिका में, बहुत अंतर है. आज हम भारत की प्रमुख पत्रिकाएं इंटरनेट पर पढ़ सकते हैं. भारत में कैसा लिखा जा रहा है? हमें पता चलता है और एक दूसरे की साहित्यिक गतिविधियों से जुड़े रहते हैं. विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ायी जाती है. कई लोगों के अथक प्रयासों से हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए अमेरिका में कई संस्थाओं की स्थापना हो गयी है और तक़रीबन हर शहर में कवि सम्मेलन, कहानी, कविता गोष्ठियां होती हैं.

❋ आप अमेरिका में हिंदी की मशाल जलाने के लिए सतत प्रयासरत हैं लेकिन भारत के लोग अंग्रेज़ी की तरफ़ भाग रहे हैं, आप क्या सोचती हैं इस बारे में?

यही तो त्रासदी है. भाषा इंसान की पहचान होती है, अपनी समृद्ध भाषा को छोड़ कर हम अंग्रेज़ी की ओर भाग रहे हैं. पर लोग भी क्या करें रोटी-रोज़ी की भाषा जब तक हिंदी नहीं बनेगी तब तक अंग्रेज़ी सब के दिलों पर छायी रहेगी. भाषाएं सीखने में बुराई नहीं पर अपनी भाषा का त्याग ना करें. संसार में नयी पीढ़ी कई-कई भाषाएं सीख रही है पर वे अपनी मातृ-भाषा नहीं छोड़ते. हिंदी भाषी लोगों को स्वयं ही इसके बारे में सोचना पड़ेगा कि क्या किया जाये ताकि युवा पीढ़ी इस ओर आकर्षित हो और हिंदी से जुड़े.

❋ आजकल बोल्ड कहानी के नाम पर जो अश्लीलता पाठकों के सामने परोसी जा रही है, उस पर आप क्या सोचती हैं?

बोल्डनेस और अश्लीलता दोनों अलग-अलग हैं. विषय बोल्ड हो सकता है. अभिव्यक्ति बोल्ड हो सकती है. स्त्री-पुरुष संबंधों को क़लम के धनी क़लमकार ने कितनी कुशलता या सहजता से रचना में ढाला है कि वह पढ़ने वाले को अश्लील ना लगें. हाल में पढ़ी पंकज सुबीर की कहानी 'अंधेरे का गणित' का ज़िक्र करूंगी, समलैंगिक संबंधों पर एक बेहतरीन कहानी है वह. शिल्प और भाषा से बेहद ख़ूबसूरती से बुना गया है उसे. यथार्थ के नाम पर बेमक़सद लिख दिया जाये जिससे रचना में फूहड़पन आ जाये और कहानी का भावनात्मक पक्ष समाप्त हो जाये. इसके हक़ में नहीं हूं मैं.

❋ साहित्य के क्षेत्र में गुटबाज़ी का चलन अपनी हदें पार कर रहा है, आपको लगता है इससे अंततः साहित्य जगत का ही नुक़सान हो रहा है?

मधु जी, गुटबाज़ी से नुक़सान तो हमेशा होता ही है और होता रहेगा. इससे सही साहित्य का मूल्यांकन नहीं हो पाता. अपने गुट के लेखकों की कमतर रचनाओं को भी सराहा जाता है और विपरीत गुट की उत्तम रचना की धड़ल्ले से आलोचना की जाती है. वैसे तो गुटबाज़ी इंसान का स्वभाव है. एक ही सोच के लोग जब इकट्ठे होकर विचार-विमर्श करते हैं तो ग्रुप सा बन जाता है और धीरे-धीरे वह ग्रुप गुट का रूप ले लेता है, साहित्य में भी यही हो रहा है. हां, साहित्य जगत बुद्धिजीवियों का संसार है अतः अगर साहित्य को प्राथमिकता दी जाये तो गुटबंदी और विचारधारा साहित्य को नुक़सान नहीं पहुंचायेगी.

❋ आप नियमित रूप से कहानियां, कविताएं, लेख लिखती हैं, यह ऊर्जा और प्रेरणा कहां से पाती हैं?

हा..हा..हा मधु जी... जैसे कि मैंने पहले कहा है कि साहित्य मेरा खाना, पीना, ओढ़ना और बिछौना है. बस इतना ही कहूंगी कि साहित्य से इश्क़ है और उस मुहब्बत का आंनद लेती हूं तो ऊर्जा अपने आप आ जाती है. और फिर जब धर्म इंसानियत हो! लोगों से प्यार करना ही जानती हूं, कोई चोट भी पहुंचा जाता है तो भी प्यार में कोई कमी नहीं आने देती. उन्हें समझना, पढ़ना ही मेरी प्रेरणा है.

❋ आप 'हिंदी चेतना' नियमित रूप से प्रकाशित करती हैं, कभी तो आपको कड़वे-मीठे अनुभवों से गुज़रना पड़ा होगा, अपने पाठकों से शेयर करना चाहेंगी?

अरे बाबा....आपने क्या पूछ लिया? कड़वे-मीठे अनुभव बताने लगूंगी तो कई पृष्ठ भर जायेंगे. अब आपने

पूछा है तो बताना पड़ेगा ही. पत्रिका का नियमित प्रकाशन ही अपने आप में बड़ा और कड़वा अनुभव है. हिंदी प्रेमी पत्रिका पढ़ना चाहते हैं, पर इसके सदस्य बनने से कतराते हैं. हिंदी के नाम पर वार्षिक सदस्यता पच्चीस डॉलर निकालना उन्हें बहुत बड़ी बात लगती है जबकि यहां सभी समृद्ध हैं. विज्ञापन वाले हिंदी पत्रिकाओं को विज्ञापन देने से झिझकते हैं. वे समझते हैं कि हिंदी पत्रिकाओं का सर्कुलेशन अंग्रेज़ी पत्रिकाओं के मुक़ाबले बहुत कम है. लेखक छपने का पैसा चाहते हैं और अगर उन्हें हम अपनी समस्या बताते हैं कि हम उन्हें पैसा देने में असमर्थ क्यों हैं.... कई लेखक तो समझ जाते हैं पर कुछ यह समझते हैं कि विदेश में प्रकाशित होने वाली पत्रिका भी अगर पैसे नहीं दे सकती तो फिर उन्हें पैसा देगा कौन? वे सोचते हैं कि पत्रिका प्रकाशित करना हमारी इच्छा है, इसकी देख-रेख हमारी ज़िम्मेदारी है, यानि हमारी सिरदर्दी पर लेखकों का हक़ देना हमारा कर्त्तव्य बनता है. ऐसी ही कई बातें बहुत कड़वाहट छोड़ जाती हैं. पर मैं और मेरे मुख्य संपादक उनकी उपेक्षा कर पत्रिका में जुटे रहते हैं. तभी तो पत्रिका पिछले १५ वर्षों से नियमित मुद्रित हो रही है. हम दोनों पत्रिका छपने के बाद के सुखद अनुभवों से ख़ुश हो लेते हैं और कड़वे अनुभव भूल जाते हैं.

❋ साहित्य को प्रवासी कहने के विषय में आपकी क्या प्रतिक्रिया है. यह लेखन क्या भारत में रचे जा रहे साहित्य से अलग है?

मैं सिर्फ़ इतना कहना चाहती हूं कि हर भाषा का साहित्य विविधता से भरपूर होता है. विदेशों में रचा जा रहा साहित्य हिंदी साहित्य में वही रस देता है जो ग्रामीण परिवेश में रची-बसी कहानी को पढ़ कर शहरी पाठक लेता और ग्रामीण पाठक शहर के उन्मुक्त वातावरण में बुनी गयी यथार्थ परक कहानी का.

❋ आप हिंदी के किस लेखक से प्रभावित हैं. क्या आप अपने लेखन पर किसी लेखक का प्रभाव महसूस करती हैं?

आपने ऐसा प्रश्न किया है कि मेरे भीतर की किशोरी चुलबुली हो उठी है. अच्छा साहित्य पढ़ने और उससे प्रभावित हो कर सीखने में मैं अभी तक किशोरी ही हूं जो बड़ी नहीं हुई है. हिंदी, उर्दू, पंजाबी के तक़रीबन सभी प्रतिष्ठित, प्रसिद्ध साहित्यकारों को पढ़ा है और उन सबसे किसी ना किसी रूप में प्रभावित हूं. सृजन तो लेखक का अपना मौलिक होता है.

मधु अरोड़ा,
ए-१/१०१, रिद्धी गार्डन,
फ़िल्म सिटी रोड,
मालाड (पू.), मुंबई-४०००९७.

❖❖❖

अभिव्यक्ति के सारे रास्ते बंद नहीं हुए हैं!

(पृष्ठ ४५ का शेषांश)

को भी उसी परिणति की ओर ले जा रहे हैं, जो याहू और गूगल समूहों की हुई. यह सब लिखने का मतलब यह नहीं है कि मैं किसी की चमचई कर रहा हूं या उनका बचाव. न मेरी ऐसी कोई हैसियत है और न चरित्र. कम से कम हमारे मित्र और शायद दुश्मन भी जानते होंगे. मगर आशय इस विनम्र निवेदन से है कि गांव देहात के जो करोड़ों लोग सोशल नेटवर्किंग से जुड़े हैं और तेज़ी से जुड़ते जा रहे हैं, उन्हें हम मुद्दों से बेदख़ल न करें. ऐसा करके आप हमारे लड़ाकू साथियों की चार दशकों की मेहनत और प्रतिबद्धता पर पानी फेर रहे हैं.

मुझे कोई छापे या न छापे, पढ़े या न पढ़े, सोशल मीडिया की वजह से मैं अपने लोगों को संबोधित कर पाता हूं. हर हाथ में मोबाइल हो जाने के बाद सोशल मीडिया की पहुंच तथाकथित मुख्यधारा और लघुपत्रिकाओं से ज़्यादा है. बसंतीपुर मेरे गांव, दिनेशपुर मेरे इलाक़े, उधमसिंह नगर मेरे ज़िले, नैनीताल मेरा गृहनगर और मेरे पहाड़ के लोगों तक मेरी बात पहुंचती है और उन्हें मेरी परवाह है, जन्मदिन की बधाइयों से कम से कम मुझे ऐसा अहसास हुआ. उनकी प्रतिक्रियाएं तो मिलती रहती हैं. कृपया मेरे लिखे पर विवेचन करें. आप चाहे कुछ करें, लेकिन वैकल्पिक मीडिया को बचाने के बारे में सोचें ज़रूर!

द्वारा : श्रीमती आरती राय
गोस्टोकानन, सोडेपुर, नॉर्थ-२४ परगना,
पं. बंगाल-७४३१७८
मो. ९९०३७१७८३३

❖❖❖

बाइस्कोप

शायरों में इतिहास रचता शायर, नक्श लायलपुरी

✍ सविता बजाज

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं.
अगले अंकों में पढ़िए अभिलाष, चाचा चौधरी, जलीस शरवानी आदि के बारे में.)

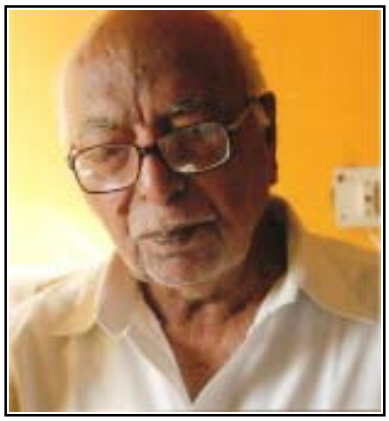

पो. बॉक्स- १९७४३,
जयराज नगर,
बोरिवली (प.),
मुंबई- ४०००९१
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

मेरा बचपन पुरानी दिल्ली की एक बड़ी सी हवेली में गुज़रा. जहां ज़्यादातर मुस्लिम परिवार रहते थे और मेरी सबसे दोस्ती थी. दिनभर बग़ल की मस्जिद से आजान सुनायी देती. मुशायरे होते और बड़े-बड़े शायर कुर्ते, पाजामे में या अचकन चढ़ाये बुद्धिजीवी अपने-अपने शेर पढ़ते तो वहां मिर्ज़ा ग़ालिब का जिक्र ज़रूर होता. लेकिन वह कभी दिखे नहीं. बस ठान ली एक दिन मिर्ज़ा ग़ालिब से मिलकर रहूंगी.

मेरा स्कूल चावड़ी बाज़ार में था और मिर्ज़ा ग़ालिब का घर बल्ली मरान में जो स्कूल से करीब था. लिहाजा एक दिन अपनी तीन-चार सहेलियों के साथ ग़ालिब साहब के घर पहुंच गयी. बाप रे! घर क्या था बाबा आदम के ज़माने का पिटारा. ग़रीबी जगह-जगह झांक रही थी. टाट के मैले-कुचैले फटे पर्दे दरवाज़ों पर टंगे थे. कोयले का टाल था वहां. अंदर झांकने पर एक औरत झल्ला दी. मैं बोली- मिर्ज़ा साहब से मिलना है. वह बोली, "बिटिया, हम तो उनके रिश्तेदार हैं, उन्हें गुज़रे तो बरसों हो गये." मैं सोचने लगी शायरों के घर क्या ऐसे होते हैं. खंडहर!

बंबई आने पर दिमाग़ की धुंध साफ़ हो गयी. यहां के शायर तो आलीशान घरों और बंगलों में रहते हैं. कारों में घूमते हैं, बढ़िया कपड़े पहनते हैं. बंबई आने पर ही एक ज़माने में मेरा ज़्यादा समय आकाशवाणी और विविध भारती में बीतता. जहां, मैं लेखन करती. 'इनसे मिलिए' प्रोग्राम में बड़ी-बड़ी हस्तियों के साक्षात्कार करती. मशहूर शायर नक्श लायलपुरी भी वहां आते थे. इनके मुशायरे भी देखे, सुने परिचय हुआ और आपके लिखे कई गीत मेरे दिलो-दिमाग में समय की लकीरें खींचते गये. आज भी नक्श साहब जब मिलते हैं तो पुरानी सब बातें उन्हें अस्सी पार करने के बाद भी ज्यों की त्यों याद हैं और मैं समय की लकीरें जो मेरे दिलो दिमाग़ में खिंची है, बस, उन्हें ही टटोला करती हूं.

जीवन में समय के साथ बहुत कुछ बदल जाता है लेकिन, नक्श साहब नहीं बदले. हाथों में हमेशा की तरह उर्दू की क़िताब, आंखों पर नज़र का चश्मा और सादा सा पहरावा–कमीज़ और पैंट और पांव में सादी-सी चप्पल. बात करते हैं तो लगता

इस शख़्स ने पांव फूंक-फूंक कर रखे हैं. नपा-तुला बोलते हैं, धीरे-धीरे सोच समझकर. न किसी की बुराई करते हैं, न सुनते हैं. शायद अच्छा जीवन जीने का इससे बड़ा नुस्ख़ा नहीं.

हाल ही में आपके घर पर जब मैं गयी तो बातों का सिलसिला चल निकला.

आपको अपना गुज़रा हुआ ज़माना कभी याद आता है?

सब याद है. पार्टीशन के बाद हमारा परिवार लखनऊ में बस गया. मैं इकलौता बेटा एफ. एस. सी. ही पास कर पाया. पढ़ाई में दिल नहीं लगता था, पिता जी मुझे इंजीनियर बनाना चाहते थे और मुझे लिटरेचर पसंद था. घंटों इसी विषय पर क़िताबें पढ़ता. मेरी शुरुआत भी बढ़िया रही. एक क्लब वाले 'क्लब डांसर' नाम का नाटक कर रहे थे उसमें कंप्टीशन था. आठ गानों का जिसे आठ लोगों ने लिखा. मेरा लिखा गाना—

'मेरे काले काले बाल सजन,
मेरे गोरे गोरे गाल,
मेरे बस में शाम सवेरा है.'

इसे बहुत पसंद किया गया. वैसे स्कूल कॉलेज की मैगज़ीन में लिखता था. टीचर मेरी लिखी चीज़ें संभाल कर रखते, उन्हें मेरी लिखावट भी पसंद थी. कहते — तुम में लेखन के जर्म्स हैं, एक दिन नाम कमाओगे.

लेखकों की बिरादरी तो बहुत बड़ी है. कोई कहानी लिखता है तो कोई, संवाद और कोई गाने, भजन वगैरह. बंबई में जब आप आये तो बड़ी-बड़ी नामी हस्तियों के बीच जैसे शकील बदायुनी, रजिंदर सिंह बेदी, इस्मत चुगताई, किशन चंदर जैसी हस्तियों के बीच अपने आपको कैसे स्थापित किया?

सचमुच, बड़ी स्ट्रगल की लेकिन मुझे अपने हुनर की वजह से काम मिला. मैं किसी के दरवाज़े पर काम मांगने नहीं गया. एक ड्रामा लिखा जिसे कुछ अमीर घर के बच्चों ने मुझसे लिखवाया, चार गाने भी लिखे. सोचा था बैठे-बिठाये काम मिलेगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. एक फ़िल्म मिली ''जग्गू'' जिसके निर्देशक जगदीश सेठी थे. ख़ूब चली लेकिन फिर स्ट्रगल करनी पड़ी. क़लर का ज़माना आ गया. पांच-छः फ़िल्मों के गाने लिख रहा था. फ़िल्में बीच में ही रुक गयीं. बहुत दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा. फिर होमी वाडिया की स्टंट फ़िल्म ''सरकस क्वीन'' मिली जो हिट हो गयी. और मैं भी हिट. पंजाबी की ''जीजा जी'' के सारे गाने हिट. मेरी गाड़ी पटरी पर आ गयी. हिंदी पंजाबी हर तरह की फ़िल्में मिलने लगीं. गाने ख़ूब मशहूर हुए. क़रीब एक सौ साठ फ़िल्मों के हिंदी गाने लिखे जैसे 'नूरी', 'चेतना', 'हीना' वगैरह. दर्जनों टी. वी. सीरियल लिखे, लिस्ट बहुत लंबी है. आप थक जायेंगी लिखते-लिखते, कहकर चुप हो गये नक्श साहब.

सुना है, आपके गीतों के साथ कहानियां भी बहुत जुड़ती हैं?

मैं उर्दू में लिखता हूं न और इस ज़बान की समझ सबको नहीं होती. कह कर मुस्करा दिये.

जैसे—

'अरमानों का ख़ून बहाये,
दामन पे छींटा न आये
है कुछ बात मेरे क़ातिल में.'

प्रोड्यूसर बोला, छींटा निकाल दो. मैंने कहा, इसके बदले कोई दूसरा शब्द नहीं है. दीवार थोड़े है कि एक ईंट निकाल कर दूसरी रख दो.

आपके लिखने का अंदाज क्या है?

मैं कभी हाथ में नोट बुक नहीं रखता, लिखकर म्यूजिक डायरेक्टर के घर पर दे आता हूं. हां, सिटिंग पर जाता हूं. कहानियां कम सुनता हूं क्योंकि ज़्यादातर चोरी की होती हैं. हां, जब गाना हिट होता है तो लोग लफ़्ज़ों की बारीकियों के बारे में पूछते हैं.

नक्श साहब, यहां आप बरसों से बने हुए हैं. बराबर काम कर रहे हैं. आपके सामने कई आये और गये आपकी सफलता का राज़?

धुन की शायरी में कोई मोटा या भारी शब्द इस्तेमाल नहीं करना चाहिए. हल्के और मीठे-मीठे शब्द होने चाहिए ताकि धुन की ख़ूबसूरती बनी रहे. मेरा पहला म्यूजिक डायरेक्टर 'बाबुल' था, जो बाद में पाकिस्तान चला गया. अब तो वह इस दुनियां को ही छोड़ गया. उसकी बहुत याद आती है.

पाकिस्तान की बात पर याद आया, आपको लायलपुर वालों ने अवार्ड भी दिया था न?

जी, मैं लायलपुर में पैदा हुआ. मैं लायलपुर, ११८ चक में रहता था. वहां के लोग बोले—अपने वतन से, अपनी मिट्टी से ऐसी मोहब्बत नहीं देखी. मेरे तीनों

लड़के अपने नाम के साथ लायलपुरी लगाते हैं.

आज कल की शायरी कैसी है?

आजकल की शायरी में वलगरिटी ज़्यादा है. अंग्रेज़ी शब्द बहुत हैं, जो मुझे पसंद नहीं. ज़्यादातर लोग यहां ऐसे हैं जिन्हें ज़बान की समझ ही नहीं. पहले अच्छे गानों का कंप्टीशन हुआ करता था और आज बुरे गानों का. आज भी अच्छे लिखने वाले हैं लेकिन उनका कोई ख़रीदार नहीं.

मुशायरों का क्या हाल है, आप तो वहां भी जाते हैं !

वहां भी आजकल हल्की शायरी है. लोग शायरी डांस करके पढ़ते हैं - गाकर पढ़ते हैं. सब बेमाने है. सब्सटेंस की तरफ़ ध्यान दो, सार को समझो. आजकल के मुशायरों ने लिटरेचर पर बुरा असर डाला है.

फ़िल्मों के बारे में प्लीज़ बताइये न !

मैंने एक गाना लिखा जिसे स्कैटिंग पर फ़िल्माना था. मतलब जमी हुई बर्फ़ पर, शब्द थे—

'परबत के दामन में,
चांदी के अंगने में,
झूमते नाचते यह बदन.'

डायरेक्टर ने गाने को जंगल में शूट कर लिया. तवायफ़ की कहानी लेकिन हीरोइन को नाचना ही नहीं आता. लिहाज़ा उसे बिठाकर मुद्राओं में बात कह दी!

आजकल की फ़िल्मों से दो रील निकाल दो, कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता. सीक्वेन्स जोड़े होते हैं. हां, मैंने अपना स्टाइल नहीं बदला, न बदल सकता हूं. आदमी जिस ढंग से काम करता है उसी में स्कोर करता है. दुनियां के पीछे भागने से क्या फ़ायदा?

जीवन से संतुष्ट हैं न?

बिलकुल, मैंने अपने लिए गाड़ी नहीं ख़रीदी, बेटे को लेकर इस शर्त पर दी, ख़ुद चलाओ, न कि ड्राइवर. हम सब साथ रहते हैं, एक ही परिवार में. एक बेटा कैमरामैन, डायरेक्टर है, गुजराती–मराठी फ़िल्में करता है.

कुछ चाहत?

सविता, मैंने आज तक, कभी किसी से काम मांगा नहीं. चाहे इसे मेरी कमज़ोरी समझो. जब मैंने फ़िल्म लाइन ज्वाइन की तो ऊपरवाले से दुआ मांगी. मालिक, किसी के दरवाज़े पर मत खड़ा करना. मेरी जायज़ ज़रूरत पूरी करते रहना. नाजायज़ बेशक पूरी न करते रहना. मैं वह दिया हूं, जिसे आंधियों ने पाला है. बुझा न पाओगी, ऐ वक़्त की हवाओं मुझे!

बी-४०१, वैभव पैलेस, ओशिवारा, लिंक रोड, जोगेश्वरी (पू.), मुंबई-४०००१०१.
मो. ९८२१३४०४०६

: प्राप्ति-स्वीकार :

पुस्तक समीक्षा

गहन संवेदना की सूक्ष्म-अभिव्यक्ति

✍ डॉ. रूपसिंह चंदेल

बहता पानी (कहानी संग्रह) : **अनिल प्रभा कुमार**
प्रकाशक : भावना प्रकाशन, १०९-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१ **मू.** ३००/- रु.

अमेरिका के प्रवासी हिंदी लेखकों में पिछले कुछ वर्षों में जिन साहित्यकारों ने अपनी गंभीर रचनात्मकता का परिचय दिया है, अनिल प्रभा कुमार उनमें एक नाम है.

प्रवासी लेखकों के विषय में प्राय: कहा जाता है कि वे नॉस्टेल्जिया के शिकार होते हैं, लेकिन क्या यह बात यहां (यानी मुख्यभूमि भारत में) रहकर लेखन कार्य कर रहे लेखकों के संदर्भ में उतनी ही सच नहीं है? लेखक अपने अतीत से मुक्त कैसे हो सकता है. अनेकों वर्षों पूर्व महानगरों में आ बसा एक संवेदनशील लेखक अपने गांव-गली, क़स्बे-मोहल्ले, नगर को भुला नहीं सकता.

हाल में अनिल प्रभा कुमार का कहानी संग्रह 'बहता पानी' दिल्ली के 'भावना प्रकाशन' से प्रकाशित हुआ है. संग्रह में उनकी चौदह कहानियां संग्रहीत हैं. यद्यपि उनकी प्रत्येक कहानी अमेरिकी परिवेश पर आधारित है तथापि कुछेक में भारतीय परिवेश भी उद्भासित है. काल, परिवेश और वातावरण का निर्धारण रचना की विषयवस्तु पर आधृत होता है. अनिल प्रभा कुमार का कथाकार रचना की अंतर्वस्तु की मांग को बख़ूबी जानता-पहचानता है और उसे अपने सुगठित शिल्प और सारगर्भित भाषा में पाठकों से परिचित करवाता है.

अनिल प्रभा कुमार के पात्र पाठक में विचलन पैदा करते हैं और उसके अंतर्मन को आप्लावित कर एक अमिट छाप छोड़ते हैं. उनकी एक भी कहानी ऐसी नहीं जो सोचने के लिए विवश नहीं करती और उस सबका कारण उनमें रेखांकित जीवन की विडंबना और विशृंखलता है. 'उसका इंतज़ार' अंदर तक हिला देने वाली एक ऐसी युवती की कहानी है जो मनपसंद युवक की प्रतीक्षा में अपनी आयु की सीढ़ियां चढ़ती चालीस तक पहुंच जाती है. यह आज का कटु सच है जो न केवल अमेरिका के किसी प्रवासी भारतीय की बेटी का सच है बल्कि भारत की हर उस दूसरी-तीसरी पढ़ी-लिखी लड़की का सच है जो नौकरी करते हुए अपने पैरों पर खड़ी है. कल, यानी नानी-दादी के कल, की भांति वह समझौते के लिए तैयार नहीं, क्योंकि जीवन के निर्णय अब वह स्वयं लेती है, भले ही उस निर्णय में चूक हो जाती है. 'उसका इंतज़ार' की विधु के साथ भी यही हुआ. अपनी मां से विधु का कथन दृष्टव्य है—''मां, तुम भी यहां आकर इन सबसे मिल गयी हो? मुझे बछिया की तरह एक अनजाने खूंटे से बांधने को तैयार हो गयीं?'' अंत में उसका कथन उसके आत्मविश्वास को दर्शाता है—''जब मैंने इतना इंतजार किया है तो थोड़ा और सही—मैं सिर्फ़ शादी करने के लिए अपने दिल से समझौता नहीं करूंगी. इतनी हताश नहीं हुई अभी मैं.''

'किसलिए' कहानी उस व्यक्ति की कहानी है, जो नौकरी से अवकाश प्राप्तकर घर में अपनी बेटी ईशा के 'पेपे' (कुत्ता) के साथ रहता है. पत्नी बानी नौकरी के चलते हफ़्ते में एक या दो दिन आती है और ईशा बाहर रहती है. 'पेपे' उस व्यक्ति के जीवन का इतना अहम हिस्सा बन जाता है कि वह उसके बिना रह नहीं सकता. यह एक जीवंत और वास्तविक कहानी है और ऐसी कहानी वही लिख सकता है जिसने ऐसे क्षण जिये हों. इस कहानी को पढ़ते हुए मुझे जैक लंडन के 'काल ऑफ दि वाइल्ड' की याद आती रही. वह कुत्तों पर ही आधारित है, जिसमें लंडन ने उनका मानवीकरण किया है. यद्यपि अनिल प्रभा की कहानी में ऐसा नहीं है, लेकिन 'पेपे' की गतिविधियां और मालिक के संकेतों को समझने व कार्यान्वित करने की उसकी क्षमता आकर्षित करती है. वह व्यक्ति उसे बेटे की भांति प्यार करता है. ढाई हज़ार डॉलर ख़र्च कर उसका ऑपरेशन करवाता है, लेकिन वह उसे बचा फिर भी नहीं पाता.

'गोद भराई' किसी स्त्री के संतान न होने की पीड़ा और भारत से किसी बच्ची को गोद ले आने को केंद्र में रखकर लिखी गयी है. 'घर' अमेरिकी संस्कृति, सभ्यता और वातावरण को रेखांकित करती है. यह मात्र सलिल और सलीम की कहानी नहीं, उस पूरे समाज की कहानी है जहां पति-पत्नी के बिलगाव का दुष्प्रभाव बच्चों को झेलना पड़ता है. अकस्मात सलीम की मां अपने पिता की सिफ़ारिश पर उसके यहां आकर रहनेवाले महेश के साथ जाकर जब अलग रहने का निर्णय करती है, सलीम इस पीड़ा को बांट किसी से नहीं पाता लेकिन वह उसे अंदर ही अंदर कुतरती रहती है. मेडिकल में जाने की क्षमता रखनेवाला सलीम चिड़ियाघर की छोटी नौकरी करने के लिए अभिशप्त हो जाता है, क्योंकि पिता भी दूसरी शादी करके कनाडा में बस जाते हैं और डॉक्टरों ने उसे सलाह दी कि उसे प्रकृति के नज़दीक रहना चाहिए. कहानी का अंत बेहद मार्मिक है—''रात की कालिमा ख़त्म हो चुकी थी. आकाश का रंग ऐसा हो गया, जैसे रात जाने से पहले राख बिखेर दी गयी हो. सलिल वहीं कार में बैठा देखता रहा. सलीम धीरे-धीरे पैर घसीटता हुआ, उस राख के शामियाने के नीचे जा रहा था—अपने घर'' यानी चिड़ियाघर जो अब सलीम का घर था.

'दीपावली की शाम' एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसके पास अपार संपत्ति है, लेकिन घर का बड़ा लड़का चवालीस साल का और छोटा छत्तीस का... तीन बेटों में कोई भी विवाहित नहीं, और तीन भाइयों के बीच एक बहन भी अविवाहित... घर का स्वामी अपने घर की तुलना ताजमहल से करता नहीं अघाता लेकिन उसी ताजमहल में दीपावली के दिन सन्नाटा उसे परेशान अवश्य करता है. घर में न कहीं रोशनी न उत्साह. अपनी परेशानी को गृहस्वामी यह कहकर छुपाता है—''अगली दीपावली हिंदुस्तान में मनायेंगे. सभी जायेंगे. बस, पास रोकड़ा होना चाहिए.''

'फिर से' कहानी पारिवारिक विघटन को व्याख्यायित करती है. केशी और तिया की कहानी. केशी सेना में युद्धभूमि में और तिया उसकी अनुपस्थिति में उसकी मान–मर्यादाओं की सीमाएं तोड़ती है. लौटकर वह फिर भी बच्चों की ख़ातिर उसके साथ रहने को तैयार हो जाता है, लेकिन तिया को उसका उपकार नहीं चाहिए था. दोनों अलग हो जाते हैं. केशी बच्चों को लेकर अमेरिका जा बसता है. वही तिया जिस क्षण बच्चों से मिलने अमेरिका पहुंचती है उस क्षण को बहुत ही सधे भाव से लेखिका ने कहानी में चित्रित किया है. पुनः मिलकर भी दोनों के अहं टकराते हैं और केशी बेटी संजना के घर से जाने का निर्णय कर लेता है.

'बरसों बाद' दो सहेलियों की मिलन गाथा है, जो तीस वर्षों बाद मिलती हैं. अपनी बेटी के प्रसव के लिए अमेरिका पहुंची सहेली, जिसका पति प्रोफ़ेसर था, अपनी पीड़ा जब इन शब्दों में बयान करती है—''नौकरी करती रही न! ऊपर से बीमारियों-तनाव की वजह से. एहसास — बस कौरव महारथियों के बीच अभिमन्यु के घिर जाने जैसा. यूं ही घर-गृहस्थी के रोज़-रोज़ के ताने, व्यंग्य, आरोप. मुझे लगता है कि जैसे मैं दुनियां की सबसे बुरी औरत हूं.'' वह कांप रही थी. एक आम भारतीय नारी, वह पढ़ी-लिखी नौकरी पेशा है तो क्या, की स्थिति का वास्तविक आख्यान करती यह कहानी कितने ही विचारणीय प्रश्न उत्पन्न करती है.

संग्रह की शीर्षक कहानी 'बहता पानी' अमेरिका से भारत आयी एक महिला की कहानी है, जिसके दिल-दिमाग में घर और स्थानों की वही छवि अंकित है जिसे छोड़कर वह प्रवास में गयी थी. उसकी सहेली माधवी का प्रश्न है—''तू पुरानी जगहों से इतनी चिपकी हुई क्यों है?''

''पता नहीं, शायद वह मेरी स्मृतियों के स्थल हैं.'' वह आगे कहती है, ''शायद मैं उसी पुरानेपन, उन्हीं बिछुड़े सुखों की तलाश में लौटती हूं. वह मेरा कंफर्ट जोन है. इस नयेपन में मेरी पहचान खो जाती है और मैं अपने को गंवाना नहीं चाहती.'' वह भाई से विशेष रूप से अनुरोध कर अपने घर के उन हिस्सों को देखती है जहां उसके पिता लेटते थे, जहां वह पढ़ती थी. और जब वापस लौटती है, वह मुड़कर उस खिड़की की ओर देखना चाहती है जहां खड़े होकर अशक्त पिता उसे विदा करते थे.

'बेटे हैं न!' एक वृद्ध मां की दारुण कथा है, जो पति की आकस्मिक मृत्यु के बाद अपने तीन बेटों में अपना भविष्य सुखी और सुरक्षित देखती है. उसके तीनों बेटे अमेरिका में जा बसते हैं. वह भी अपने सबसे चहेते बेटे प्रकाश के साथ चली जाती है. प्रकाश के बच्चे जब तक छोटे होते हैं सत्या के प्रति प्रकाश की पत्नी अमला का

व्यवहार ठीक रहता है, लेकिन ज़रूरत समाप्त होते ही सत्या उसे बर्दाश्त से बाहर हो जाती है — ''तो क्या हमने आपका ठेका ले रखा है?'' अपना आपा खो बैठी अमला कहती है. अंतत: अमला द्वारा प्रताड़ित-अपमानित सत्या को प्रकाश भारत भेज देता है, जहां सत्या की छोटी बहन दमयंती उसे एयरपोर्ट पर रिसीव करती है. दमयंती के पूछने पर ''बहन जी, क्या हो गया?'' सत्या फूट पड़ती है, ''दमी, उस दिन नहीं, पर आज मैं सचमुच विधवा हो गयी हूं.''

'मैं रमा नहीं', अमेरिका निवासी एक अपाहिज पति के लिए समर्पित रमा, एक प्रोफ़ेसर और ऐसी आधुनिक युवती की कहानी है जो भारत से शोध और नौकरी के लिए अमेरिका जाती है. एक ओर रमा है जो दूसरों के लिए भोजन पकाकर अपना और अपने पति का पोषण कर रही है जो कभी इंजीनियर के रूप में वहां गया था, लेकिन एक दुर्घटना के कारण अशक्त जीवन जी रहा था. दूसरी ओर वह युवती है जो अपने पति को छोड़कर टोरंटो में रह रहे अपने भाई के मित्र अर्जुन के साथ लिव-इन रिलेशन में रहती है. प्रोफ़ेसर के यह पूछने पर कि, ''तुम अर्जुन से विवाह क्यों नहीं कर लेतीं? बाक़ी सब-कुछ तो वैसा ही हैं.'' वह उत्तर देती है, ''विवाह करने से प्रेम के सारे आयाम बदल जाते हैं.'' और अंत में वह प्रोफ़ेसर को एक और झटका देती है, ''मैं आपको एक बात और बता देना चाहती हूं...'' उसने होंठों को भींचा, ''कि मैं रमा नहीं हूं.'' यह कहानी पीढ़ियों के अंतर को बख़ूबी दर्शाती है.

'ये औरतें, वे औरतें' एक ऐसे सच से पर्दा उठाती है, जहां नमिता के घर की नौकरानी तीबा यदि अपने पति से प्रताड़ित है तो वहीं आभिजात्य सिम्मी और नमिता भी हैं. तीबा का पति मामूली-सी बातों में उसे पीटता है, गर्म प्रेशर कुकर से जला देता है तो नमिता का पति जया के साथ अंधेरे का लाभ उठाने पर नमिता के प्रश्न पर उसे थप्पड़ रसीद कर देता है. कहानी अपरिवर्तित सामंती पुरुष मानसिकता, उसकी लंपटता और शोषित-प्रताड़ित नारी जीवन की विडंबना को अत्यंत सार्थकता से अभिव्यक्त करती है. 'रीती हुई', 'वानप्रस्थ' और 'सफ़ेद चादर' भी उल्लेखनीय कहानियां हैं.

प्रभा कुमार की कहानियों से गुज़रते हुए एक महत्वपूर्ण बात यह भी उभरकर आती है कि उनमें एक उपन्यासकार विद्यमान है. 'बेटे हैं न!' में एक अच्छे और बड़े औपन्यासिक कथानक की संभावना अंतर्निहित है. यह एक व्यापक फलक की कहानी है.

अंत में, यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि अमेरिका के हिंदी लेखकों में उषा प्रियंवदा और सुषम बेदी की कथा परंपरा को जो कथाकार गंभीरता से आगे बढ़ा रहे हैं अनिल प्रभा कुमार और इला प्रसाद उनमें प्रमुख हैं. इनकी कहानियों की ही नहीं, कविताओं की भी मौलिकता, भाषा की प्रांजलता और शिल्प वैशिष्ठ्य अनूठा है.

बी-३/२३०, सादतपुर विस्तार,
दिल्ली-११००९४.
फो. : ९८११३६५८०९

गीत

डॉ. माया सिंह 'माया'

मुझे शूल पथ के सुमन से लगेंगे
अगर साथ मेरे चलो तुम डगर में,
मुझे शूल पथ के सुमन से लगेंगे,
अगर तुम वचन दो मुझे सहगमन का.
व्यथा-ताप शीतल पवन से लगेंगे,
सुखों की उमंगें रही हैं अधूरी.
रही प्यास से आस की नित्य दूरी,
अगर नेह की दृष्टि से तुम निहारो.
मुझे व्यंग्य, मधुरिम वचन से लगेंगे,
भटकते रहे स्वप्न बेचैन होकर.
चले आंसुओं से थके पांव धोकर,
मेरे पोंछ अश्रु जो मुस्कान दो तुम.
मुझे धूल-कण भी रतन से लगेंगे,
विरह की नदी के किनारे-किनारे.
चले रात-दिन ये चरण हैं विचारे,
जो तुम पास आ जाओ ऐसे में प्रियतम.
मुझे कंटकित वन चमन से लगेंगे.

१०१४, राजेंद्र नगर,
बैंक कालोनी, उरई-२८५००१